श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः

भागवत पत्रिका

नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक ।
भक्ति अधोक्षज की अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥

सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर ।
किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो, श्रम व्यर्थ सभी, केवल बन्धनकर ॥

वर्ष ४ | गौराब्द ४७२, मास—पद्मनाभ २०, वार—गर्भोदशायी
शुक्रवार, ३० आश्विन, सम्वत् २०१५, १७ अक्टूबर १९५८ | संख्या ५

श्रीश्रीराधाष्टकम्

[श्रीश्रीलरूप-गोस्वामी-पादेन विरचितम्]

श्रीश्रीवृन्दावनेश्वर्यै नमः

दिशि दिशि रचयन्तीं सञ्चरन्नेत्र-लक्ष्मी-विलसित-खुरलीभिः खञ्जरीटस्य खेलां ।
हृदय-मधुप-मल्लीं बल्लवाधीश-सूनोरखिल-गुण-गभीरां राधिकामर्चयामि ॥१॥

पितुरिह वृषभानोरन्ववाय-प्रशस्तिं जगति किल समस्ते सुष्ठु विस्तारयन्तीं ।
व्रजनृपति-कुमारं खेलयन्तीं सखीभिः सुरभिणि निज-कुण्डे राधिकामर्चयामि ॥२॥

शरदुपचित-राका-कौमुदीनाथ-कीर्त्तिप्रकर-दमनदीक्षा-दक्षिण-स्मेर-वक्त्रां ।
नटदघ-भिद-पाङ्गोत्तुङ्गितानङ्ग-रङ्गां कलित-रुचि-तरङ्गां राधिकामर्चयामि ॥३॥

विविध-कुसुमवृन्दोत्फुल्ल-धम्मिल्ल-धाटी-विघटित-मद-घूर्णत्-केकि-पिच्छ-प्रशस्तिं ।
मधु-रिपु-मुख-बिम्बोद्गीर्ण-ताम्बूल-राग-स्फुरदमल-कपोलां राधिकामर्चयामि ॥४॥

अमलिन-ललितान्तः-स्नेह-सिक्तान्तरङ्गामखिलविध-विशाखा-सख्य-विख्यात-शीलां ।
स्फुरदघभिदनर्घ-प्रेम-माणिक्य-पेटीं धृत-मधुर-विनोदां राधिकामर्चयामि ॥५॥

अतुलमहसि वृन्दारण्य-राज्येऽभिषिक्तां निखिल-समय-भर्तुः कार्तिकस्याधिदेवीं ।
अपरिमित-मुकुन्द-प्रेयसीवृन्द-मुख्यां जगदघ-हर कीर्तिं राधिकामर्चयामि ॥६॥

हरिपद-नख-कोटी-पृष्ठ-पर्यन्त-सीमा-तटमपि कलयन्तीं प्राण-कोटेरभीष्टं ।
प्रमुदित-मदिराक्षीवृन्द-वैदग्धि-दीक्षा-गुरुमति-गुरु-कीर्तिं राधिकामर्चयामि ॥७॥

अमल-कनक-पट्टोद्घृष्ट-कश्मीर-गौरीं मधुरिमलहरीभिः संपरीतां किशोरीं ।
हरिभुज-परिरब्धां लब्ध-रोमाञ्च-पालिं स्फुरदरुण-दुकूलां राधिकामर्चयामि ॥८॥

तदमल-मधुरिम्नां काममाधार-रूपं परिपठति वरिष्ठं सुष्ठु राधाष्टकं यः ।
अखिल-किरण-पुत्री-कुल-कल्याण-चन्द्रः स्फुटमखिलमभीष्टं तस्य तुष्टस्तनोति ॥९॥

अनुवाद—

जिनके चंचल नेत्र जिधर ही फिरते हैं, उसी ओर ऐसा लगता है, मानो चपल खञ्जन-मालाएँ नृत्य कर रही हों; अर्थात् जिनके नेत्र-युगल खञ्जनके नेत्रोंके समान अतिशय चंचल हैं, जो श्रीकृष्णके चित्तरूपी भ्रमरके लिये मल्लिका-पुष्प-स्वरूप हैं एवं जो अनन्त गुणोंका आश्रय होनेके कारण अत्यन्त गम्भीर-स्वभावकी हैं, उन श्रीमती राधिकाजीका मैं पूजन करता हूँ ॥१॥

जो अपने पिता वृषभानु-कुलकी कीर्त्तिका संपूर्ण विश्वमें विस्तार कर रही हैं, जो विविध प्रकारके पुष्पोंसे सुवासित अपने विलास-स्थान श्रीराधाकुण्डमें सखियोंको साथ लेकर कृष्णके साथ जल-क्रीड़ा करती हैं, उन श्रीमती राधिकाजीका मैं पूजन करता हूँ ॥२॥

जो अपने मन्द-मन्द हास्ययुक्त मुख-मण्डलसे शरतकालीन निर्मल चन्द्रकी शोभाका तिरस्कार करती हैं, श्रीकृष्णके चञ्चल कटाक्षोंसे जिनका अनंग-रंग वृद्धि प्राप्त होता है और जिन्होंने अपने शरीर पर लावण्यकी तरङ्गोंको धारण कर रखा है, उन श्रीमती राधिकाजीका मैं पूजन करता हूँ ॥३॥

जो विविध-प्रकारके सुन्दर-सुन्दर पुष्पोंसे सुशोभित अपने केशपाशसे (मयूर-पिच्छके गर्वसे गर्वित) मयूरोंके गर्वको भी चूर्ण-विचूर्ण करती हैं, श्रीकृष्ण द्वारा मुख-चुम्बनके कारण जिनके सुन्दर कपोल ताम्बूल-रङ्गसे किंचित रंजित हैं, उन श्रीमती राधिकाजीका मैं अर्चन करता हूँ ॥४॥

जिनका अन्तःकरण ललिताके निर्मल आन्तरिक स्नेहसे अभिषिक्त है, विशाखाके साथ अगाध सख्य-भाव होनेके कारण जिनका सुन्दर स्वभाव जगद्विख्यात है, जो अमूल्य कृष्णप्रेमकी पेटिका हैं, उन माधुर्य-विनोदिनी श्रीमती राधिकाजीका मैं पूजन करता हूँ ॥५॥

जो अतुलनीय ऐश्वर्यसम्पन्न श्रीवृन्दावन राज्यकी अधीश्वरी हैं, जो निखिल समयके अधिपति कार्त्तिक मासकी अधिष्ठात्री देवता-स्वरूप हैं, जो श्रीकृष्णकी असंख्य प्रेयसियोंमें सर्व-प्रधाना हैं, जिनकी लीला निखिल पातकोंको दूर करनेवाली है, उन श्रीमती राधिकाजीका मैं अर्चन करता हूँ ॥६॥

जो श्रीकृष्णके चरण-कमलोंके नख-प्रान्तको अपने प्राणोंका अभिष्ट जानती हैं अर्थात् जो कृष्णगत प्राण हैं, जो कृष्णके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं जानतीं, जो निखिल व्रज-रमणियोंकी वाक्-चातुरी-शिक्षाकी गुरु हैं, उन विपुल-कीर्त्तिमती श्रीमती राधिकाजीका मैं पूजन करता हूँ ॥७॥

जो कसौटी (कषपट्टी) पर घिसे हुए कुँकुमकी तरह गौर-वर्णकी हैं, जिनका श्रीअङ्ग माधुर्यकी तरंगों से परिव्याप्त है, श्रीकृष्णकी भुजाओंसे आलिङ्गित होने पर तत्क्षण जिनका शरीर पुलकित हो उठता है, जिनके वस्त्र सुन्दर अरुण वर्णके हैं, उन किशोरी श्रीमती राधिकाजीका मैं पूजन करता हूँ ॥८॥

जो श्रीमती राधिकाके स्वरूप, गुण और विभूति पूर्ण इस उत्तम अष्टकका प्रतिदिन पाठ करते हैं, वृन्दावन चन्द्र श्रीकृष्ण सन्तुष्ट होकर उनके समस्त प्रकारकी कामनाओंको पूर्ण करते हैं ॥९॥

संत (सज्जन) के लक्षण

सम (४)

समता किसे कहते हैं ? शक्ति परिणत नश्वर वस्तुएँ विषम हैं

दो वस्तुएँ एक जैसी होने पर उनको 'सम' कहा जाता है। और उनमें परस्पर पार्थक्य विद्यमान रहने पर उनको विषम कहा जाता है। कृष्णेतर जड़ीय वस्तुओं में नामका भेद रहने पर, रूपका भेद रहने पर, गुणका भेद रहने पर एवं क्रियाका भेद रहने पर उन वस्तुओंको सम नहीं कहा जाता है। इसलिये जड़-जगत्में परिदृश्यमान वस्तु या ज्ञानाधिकृत विषयसमूह विषम या ऊँच-नीच गुणविशिष्ट हैं। विषम वस्तुओंमें परस्पर भेद दिखलाई पड़ता है, परन्तु स्वरूपतः उनमें एकत्व विद्यमान रहनेके कारण संतजन बहिरंगा शक्ति-परिणत जड़ीय विषय वस्तुओंमें समता दर्शन करते हैं अर्थात् बहिरंगा शक्तिजात सम वस्तु ही जानते हैं। पुनः बहिरंगा शक्तिजात प्रतीति नहीं रहने पर अर्थात् अप्राकृत दर्शनमें वे वैसी विचित्रताको अप्राकृत साम्य या अन्वय जानते हैं। किन्तु अभेदवादी जड़ीय भेदके पंजेसे मुक्त होनेके लिये विचित्रताका लोप कराकर वस्तुकी अद्वयताकी प्रशंसा करते हैं। संतजन अभेद-वादी न होने पर भी एकत्व विनाशी विरोधवादका पोषण नहीं करते। वे लोग शक्ति-परिणामवादमें ही विश्वास करते हैं। अतएव शक्ति-परिणत नश्वर-वस्तुएँ गुण द्वारा परिचित हैं तथा भगवान्की बहि-रंगा शक्ति द्वारा परस्पर विषम या विभिन्न हैं।

केवल वैष्णव ही समदर्शी हैं

प्राकृत सृष्टिके अन्तर्गत वस्तुओंमें भेद-प्रतीति प्रबल होनेपर भी सज्जनवृन्द उनमें स्वरूपगत साम्य दर्शन करते हैं। विचित्रत्व या विलास एकमात्र जड़की ही सम्पत्ति है, एवं ऐसी विचित्रता या विलास जड़ातीत नित्य अप्राकृत राज्यमें कदापि संभव नहीं है—मायावादियोंका यह काल्पनिक मतवाद सज्जनगण स्वीकार नहीं करते। परन्तु वे अप्राकृत महाजनोंके इस विचारसे सहमत हैं कि नित्य जगत्में शक्ति-वैचित्र्य अवश्य अवश्य विद्यमान है। अप्राकृत महा-जनोंके साथ सज्जन पुरुषोंकी समता है; अतएव वैष्णव ही एकमात्र समदर्शी हैं।

विषय और आश्रयगत सत्ताभेद विशिष्ट होने पर भी शक्ति और शक्तिमान एक या सम हैं

विषमदर्शी मायावादियोंका कहना है—शक्ति-परि-णत जगत् मिथ्या है। 'शक्ति-परिणाम' और 'माया' शब्दोंमें कोई अंतर नहीं है। भगवान और उनकी स्वरूपशक्तिका परस्पर परिचयगत भेद मिथ्या है। शक्ति और शक्तिमानमें परिचयगत पार्थक्य स्वीकार कर-नेसे द्वैतभाव पैदा हो पड़ता है; ऐसी दशामें समदर्शन कैसे संभव है ? परन्तु सज्जन पुरुषोंका कथन यह है, कि शक्ति और शक्तिमान अविच्छिन्न वस्तु होने पर भी तथा विषय और आश्रयगत सत्ताभेद-विशिष्ट होने पर भी एक या सम हैं। शक्तिमान् एक वस्तु हैं; उनकी नित्य शक्तियोंमें सजातीय, विजातीय और स्वगत शक्तिभेद वर्तमान है। वस्तु अभिन्न होने पर भी, शक्तिमान है, निःशक्तिक नहीं। वह परस्पर विरुद्ध शक्तियोंके आश्रय हैं।

जगत्की समस्त वस्तुएँ भगवत्सेवाके उपकरण हैं

बहिरंगा मायाशक्ति द्वारा उत्पन्न वस्तुएँ, जीव शक्ति परिणत जीवोंसे शक्तिविचारसे भिन्न होने पर भी सेवोन्मुख शुद्ध जीवोंके निकट हरि-सेवामें सहायक

हैं; इसलिये सज्जन पुरुष उनको भी विषम नहीं दर्शन करते हैं। सेवोन्मुख शुद्धजीव निन्दा और प्रतिष्ठा दोनों में सम एवं प्रसन्न रहते हैं तथा अभावजन्य कभी भी शोक नहीं करते। वे आकांक्षा नहीं करते तथा प्राणि-मात्रके प्रति समदर्शी होकर पराभक्ति प्राप्त करते हैं। वे दूसरोंके स्वभाव और कर्मोंकी न तो निंदा करते हैं और न प्रशंसा ही। वे सर्दी और गर्मीकी तीव्रताको समभावसे दर्शन करते हैं। वे विद्या-विनय-सम्पन्न ब्राह्मण और नीच चाण्डालमें समदृष्टि युक्त होते हैं, परम पवित्र गाय और अस्पृश्य कुत्तेके प्रति समदर्शी होते हैं; क्षुद्र चींटी और बृहत् हाथी—दोनोंके प्रति समदर्शी होना उनका धर्म है। शक्तिके तारतम्यके कारण वस्तु-स्वरूपमें वैषम्य दर्शनकी आवश्यकता नहीं होती। ब्राह्मण और चंडालमें, कुत्ता और गायमें, गाय और हाथीमें मायिक भेद दिखलाई पड़ने पर भी वे सबको स्वरूपतः हरि-दास दर्शन करते हैं। प्राकृत आसक्ति संतोंके ऊपर प्रभाव नहीं डाल सकती है। वे अनासक्त भावसे उन समस्त वस्तुओंको भगवत्-सम्बन्धी जानकर उनमें वैषम्य आरोप नहीं करते। उन सबको वे अपने अराध्य श्रीकृष्णकी सेवामें सहा-यक समझते हैं।

कृष्णोन्मुख जीवोंके प्रति दया और हरि-विरोधि-योंका दुःसंग-त्याग ही समदर्शन है

मायाकी दासता किंचित् परिमाणमें शिथिल होने पर जिस समय जीव कृष्णके प्रति उन्मुख होते हैं, उस समय हरिमें प्रेम, हरिसेवकोंसे बन्धुत्व, कृष्णके प्रति उन्मुख जीवोंके प्रति दयाभाव और हरि-विरो-धीजनों का दुःसंग त्याग करके ही वे समदर्शी होते हैं। इस सम्बन्धमें यदि वे कपटतावश अपने समदर्शित्वका भाव दिखलाने जाकर बालिशों अर्थात् अज्ञोंके प्रति दयाके बदले समबुद्धि करते हैं, तो उससे साधुके समदर्शन विचारके अनुसार कलंक उपस्थित होता है। यदि वे भगवद्भक्तोंको कृष्ण-विद्वेषिजनोंके समान मानते हैं, तो उससे उनकी हरि-विमुखता और भी वृद्धि प्राप्त होती है।

हरि-सम्बन्धी वस्तुओंको यदि कोई प्रापञ्चिक समझकर उनका संग त्याग करे तो ऐसा होनेसे उस व्यक्तिकी 'समता' दूर हो जाती है। समताके विचा-रसे अपने अधिकारका उल्लंघन करनेसे कोई सुफल नहीं प्राप्त होता। बल्कि उलटे फल्गु वैराग्यरूप प्रतिष्ठा उप-स्थित होकर उनकी समताको नष्ट कर देती है।

असाधु व्यक्ति समताके विचारके अनुसार ब्रह्मा और रुद्र आदि देवताओंको विष्णुके समान मानते हैं; परन्तु समदर्शी वैष्णवगण उनके इस कल्पित विचारका अनुमोदन नहीं करते। प्राकृत जगत्की अनित्य कालो-त्पन्न ऊँच-नीच अवस्थाएँ कभी भी नित्य अवस्थाओं-के समान सम नहीं हैं। परन्तु कृष्णके लिये अखिल-चेष्टामय साधुजन जड़ीय वस्तुओंमें भगवद्भाव दर्शन करते हैं तथा समस्त वस्तुओंको अपना भोग्य समझने-के बदले कृष्णसेवाके उपकरणके रूपमें दर्शन करते हैं। यही अप्राकृत दर्शन है।

काम-क्रोध आदि जड़ जगत्के नित्य संगीजन वस्तुका वैषम्य विचार करने जाकर उनका स्वरूप दर्शन करके नाना प्रकारके अनर्थोंकी सृष्टि करते हैं; परन्तु पारमार्थिक सज्जन पुरुष अपने कामको कृष्णकी सेवा-में, क्रोधको भक्त-विद्वेषियोंके प्रति और लोभको सत्-संगमें कृष्ण-कथा श्रवणमें, मस्तकको भगवानके गुणा-नुवादमें, मूढ़ताको इष्ट प्राप्तिके अतिरिक्त विषयोंमें नियुक्त करते हैं। विषमदर्शी हरि-विमुखजन इन चेष्टा-ओंको वैष्णव समदर्शिताका विरोधी समझकर अपना सर्वनाश करते हैं। सज्जन पुरुषोंका अपने शत्रुओं-के प्रति वैषम्य भाव नहीं होता, वे निरंतर समतायुक्त समदर्शी होते हैं।

—ॐ विष्णुपाद श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती

भक्तितत्त्व-विवेक

प्रथम भाग

भक्तिका स्वरूप-विवेक

युगपद्भाजते यस्मिन् भेदाभेद विचित्रता।
वन्दे तं कृष्णचैतन्यं ब्रजतत्त्वान्दितं स्वतः॥
प्रणम्य गौरचन्द्रस्य सेवकान् शुद्धवैष्णवान्।
'भक्तितत्त्व विवेका'ख्यं शास्त्रं वक्ष्यामि यत्नतः॥
विश्ववैष्णव-दासस्य क्षुद्रस्याकिञ्चनस्य मे।
एतस्मिन्नुद्यमे ह्येकं बलं भागवती क्षमा॥

हे अन्तरङ्ग वैष्णव महोदयगण! विशुद्ध-हरिभक्तिका आस्वदन करना और विशुद्ध हरिभक्तिका प्रचार करना ही हमारा उद्देश्य है। इसलिये हमारा सबसे पहला कर्त्तव्य है—शुद्ध हरिभक्ति किसे कहते हैं; यह अनुशीलन करना। इस पवित्र अनुशीलनसे दो फायदे होंगे। पहला यह कि विशुद्ध हरिभक्तिका स्वरूप जान लेनेसे हमारा सारा अज्ञान दूर हो जायगा, जिससे हम विशुद्ध भक्तिका अमिश्र भावसे आस्वादन कर चरितार्थ हो सकेंगे और दूसरा यह कि दुर्भाग्यक्रमसे नाना प्रकारके मिश्रमत हमारी बुद्धिको इतनी हद तक दूषित कर देते हैं कि हम पवित्र-हरिभक्तिसे च्युत होकर मिश्रमतका ही आदर करते हैं। शुद्धा भक्तिका परिचय जान लेने पर हम मिश्रमतोंसे अपनी रक्षा कर सकते हैं। मिश्रमत हमारा सबसे बड़ा शत्रु है। जो लोग यह कहते हैं कि भक्ति शुद्ध नहीं है, ईश्वर एक भान मात्र है, हम लोगोंने ही कल्पना शक्ति द्वारा ईश्वरकी सृष्टिकर भक्तिरूप एक चित्त-स्वभावको अपनाया है; वे हमारे विरुद्ध होने पर भी अधिक अनिष्ट नहीं कर पाते। क्योंकि हम उन लोगोंको तुरंत पहचान लेते हैं और उनकी उपेक्षा कर देते हैं अर्थात् उनसे दूर रहते हैं। किन्तु जो लोग यह कहते हैं कि भगवद्भक्ति ही सर्वोत्तम धर्म है, परन्तु साथ ही शुद्ध भक्तिके विपरीत सिद्धान्तोंकी शिक्षा भी दूसरोंको दिया करते हैं, वे लोग हमारा अधिकतर अहित करते हैं। भक्तिके धोखेमें विपरीत तत्त्वोंकी शिक्षा देकर अंतमें हमें भगवद्भक्तिके विपरीत मार्ग पर ला देते हैं। इस लिये हमारे पूर्व्वाचार्योंने अत्यन्त यत्नके साथ शुद्ध भक्तिका स्वरूप निर्णय कर हम लोगोंको मिश्रमतोंसे बचनेके लिये बार-बार सावधान किया है। हम उनके उपदेशोंका क्रमशः अनुशीलन करेंगे। उन लोगोंने शुद्ध भक्तिका स्वरूप निर्णय करनेके लिये अनेकानेक ग्रन्थोंकी रचनाएँ की हैं। इनमें 'श्रीभक्ति-रसामृत-सिन्धु' एक अत्यन्त उपादेय ग्रन्थ है। उक्त ग्रन्थमें श्रीरूप गोस्वामीने शुद्ध भक्तिका साधारण लक्षण बतलाते हुए लिखा है—

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञान-कर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा॥

उक्त श्लोकके एक-एक शब्दका विवेचन नहीं करनेसे भक्तिका लक्षण समझमें नहीं आ सकता है। इस श्लोकमें जो 'उत्तमा भक्ति' कहा गया है, उसका अर्थ क्या है? 'उत्तमा भक्ति' शब्दके द्वारा क्या यह समझना होगा कि एक 'अधमा भक्ति' भी है? या और कुछ? उत्तमा भक्तिका अर्थ यह है कि भक्ति वृत्तिका जिस समय बिलकुल शुद्ध या अमिश्र अवस्था में होती है, उस समय उसे उत्तमा भक्ति कहते हैं। उत्तम जल कहनेसे जैसे निर्मल जलका बोध होता है अर्थात् उस जलमें कोई दूसरा द्रव्य, गन्ध या रंग नहीं मिला हुआ है—ऐसा समझा जाता है; उसी प्रकार 'उत्तमा भक्ति' शब्दसे निर्मल, निर्गुण, अमिश्र, केवला और अकिञ्चना भक्तिको समझना होगा। इन विशेषणोंके द्वारा भक्तिका विपरीत भाव नहीं ग्रहण करना चाहिए। विपरीत भाव वर्जित होनेसे

शुद्ध स्वाभाव ही लक्षित होता है। केवल 'भक्ति'-शब्दका व्यवहार करनेसे जो अर्थ होता है, इन सारे विशेषणोंके द्वारा भी उसी अर्थका बोध होता है। तब क्या भक्ति-रसाचार्य श्रीरूप गोस्वामीने निरर्थक ही 'उत्तमा' विशेषणका प्रयोग किया है? इसका उत्तर है—नहीं। जिस प्रकार बहुधा जल पीनेवाले व्यक्ति स्वभावतः ही पूछते हैं कि 'क्या यह जल निर्मल (Filtered) है? उसी प्रकार मिश्राभक्ति को ही अधिकतर स्थानोंमें लक्षित होते देखकर आचार्योंने उत्तमा-भक्तिका लक्षण निरूपण करना अत्यन्त आवश्यक समझा है। वास्तवमें रसाचार्य श्रीरूप गोस्वामीने केवल भक्तिका ही लक्षण बतलाया है। 'छल-भक्ति', प्रतिबिम्ब-भक्ति', 'छाया-भक्ति', 'कर्ममिश्रा-भक्ति', 'ज्ञानमिश्रा-भक्ति' आदि भाव-समूह भक्ति नहीं हैं—इसका क्रमशः विवेचन होगा।

भक्तिका स्वरूप लक्षण क्या है, इस प्रश्नके उत्तरमें कहा गया है कि, आनुकूल्यमय कृष्णानुशीलन ही भक्ति है। इस श्लोकमें 'अनुशीलन' शब्दका अर्थ 'दुर्गमसङ्गमनी'—टीकाकार श्रीजीव गोस्वामी महोदयने लिखा है कि 'अनुशीलन'-शब्दके दो अर्थ हैं। पहला प्रवृत्ति-निवृत्ति-स्वरूप शरीर मन और वाणीकी चेष्टा रूप अनुशीलन। दूसरा प्रीति-विषयात्मक मानस भावरूप अनुशीलन। अनुशीलन दो प्रकारके होने पर भी भावरूप अनुशीलन—चेष्टारूप अनुशीलनके अन्तर्गत है। अतएव चेष्टा और भाव दोनों परस्पर आन्दोलित होते हैं और अंतमें चेष्टा ही एकमात्र अनुशीलनके लक्षणके रूपमें पर्यवसित होती है। शरीर, मन और वाणीकी चेष्टाएँ कृष्णके सम्बन्धमें आनुकूल्यात्मिका होने पर 'भक्ति' नाम धारण करती हैं। कृष्णके प्रति कंस और शिशुपाल आदि जैसी अहर्निश प्रतिकूल चेष्टा होने पर भी वैसी चेष्टा भक्ति नहीं कहलाती—अनुकूल-चेष्टा का नाम ही भक्ति है। 'भज'-धातुसे 'भक्ति' शब्द बनता है। अतएव गरुड़ पुराणमें ऐसा लिखा है—

भज इत्येव वै धातुः सेवायां परिकीर्त्तितः।
तस्मात् सेवा बुधैः प्रोक्ता भक्ति-साधने-भूयसी॥

इस श्लोकके अनुसार कृष्ण-सेवाको ही भक्ति कहा गया है। सेवा ही भक्तिका स्वरूप लक्षण है। जीव और कृष्णका सेवक-सेव्य भाव ही नित्य है।

मूल श्लोकमें 'कृष्णानुशीलन'-शब्दका प्रयोग किया गया है; इसका तात्पर्य यह है कि 'केवल भक्ति' शब्दके चरम विश्राम स्थल एकमात्र भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं। श्रीकृष्णके नारायण आदि दूसरे-दूसरे रूपों के प्रति भी भक्ति क्रिया होती है। परन्तु श्रीकृष्ण रूपका प्रति भक्तिकी जैसी पूर्ण क्रिया होती है, अन्यान्य रूपोंके प्रति भक्तिकी वैसी क्रिया नहीं लक्षित होती है; इस विषयकी विवेचना उपयुक्त प्रसंग आने पर पुंखानुपुंख रूपसे की जायगी। सम्प्रति यहीं तक जान लेना आवश्यक है कि भगवत्तत्त्व ही भक्ति का एकमात्र विषय है। तत्त्व तीन प्रकारके हैं—ब्रह्मतत्त्व, परमात्मतत्त्व और भगवत्तत्त्व। तत्त्व स्वरूपतः एक और अखण्ड होनेपर भी जीवकी तत्त्व-आलोचनाके अधिकारके तारतम्यके अनुसार वह तत्त्व त्रिविध रूपोंमें लक्षित होता है। जो लोग ज्ञान मार्गके द्वारा तत्त्व वस्तुका दर्शन करनेका प्रयत्न करते हैं, वे ब्रह्मके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं देख पाते। वे लोग मायिक जगत्के गुणोंका व्यतिरेक भावसे चिन्तन करते-करते मायाको उत्तीर्ण होनेके लिये जो अध्यात्मिक चेष्टा करते हैं, उसके द्वारा वे मायाके समस्त विपरीत गुणोंकी कल्पना कर एक अचिन्त्य, अव्यक्त, निरवयव, निराकार और निर्विकार ब्रह्ममें अवस्थित होकर, मैं तत्त्वका दर्शन किया हूँ—ऐसा मानते हैं। किन्तु वास्तवमें मायिक गुणों का अभाव होनेसे ही वस्तु प्राप्त होती है—इसका प्रमाण क्या है? अध्यात्मिक तार्किकजन निर्गुण श्रुतियोंको प्रमाणके रूपमें पेश करते हैं। उनके नेत्र नहीं हैं, वे अवाङ्मनसो-गोचर हैं, उनके कान नहीं हैं, उनके अंग-प्रत्यंग नहीं हैं—ऐसे-ऐसे बहुतसे वेद-वाक्य हैं, यह ठीक है, परन्तु कविकर्णपूरकृत श्रीचैतन्यचन्द्रोदयधृत श्रीमद् प्रभुपादके वाक्यके प्रति दृष्टि करनेसे इस तर्कका पूर्णरूपेण निरसन हो जाता है—

या या श्रुतिर्जल्पति निर्विशेषं सा साविधत्ते सविशेषमेव ।
विचारयोगे सति हन्य तासां प्रायो बलीयः सविशेषमेव ॥

जिन-जिन श्रुति-वाक्योंमें निर्विशेष तत्त्वकी बात कही गयी है, उन-उन श्रुतिवाक्योंमें ही सविशेष तत्त्वका उल्लेख है। श्रुतिवाक्योंका भलीभाँति समन्वय कर पाने पर सविशेष तत्त्व ही बलवान दीख पड़ता है। जैसे—किसी जगह श्रुति कहती है कि उनके हाथ, पैर और आँखें नहीं हैं; परन्तु उसमें देखना होगा कि वे सब कुछ करते हैं, सर्वत्र गमन करते हैं और सब कुछ श्रवण करते हैं। अब इसकी शुद्ध मीमांसा यह है कि बद्ध जीवोंकी तरह उनके प्राकृत हाथ-पैर आदि नहीं हैं, उनका नित्य विग्रह है। उनका वह विग्रह प्रकृतिके चौबीस तत्त्वोंसे अतीत विशुद्ध चिन्मय है।

फलतः केवल ज्ञानमार्गका अनुशीलन करनेसे निराकार ब्रह्म ही चरम तत्त्व प्रतीत होते हैं। इसमें सूक्ष्म बात यह है कि 'केवल-ज्ञान' प्राकृत वस्तु है अर्थात् प्राकृत जगत्में हम जो कुछ जानकारी प्राप्त करते हैं अथवा जो भी सिद्धान्त करते हैं, वह प्रकृतिके ऊपर निर्भर करके ही करते हैं। इसलिये वह सिद्धान्त या तो जड़ीय सिद्धान्त हो पड़ता है, और नहीं तो व्यतिरेक सिद्धान्त द्वारा जड़से विपरीत एक तत्त्व गठित हो पड़ता है। उसमें चिन्मय परम तत्त्व दुर्लभ होता है। श्रीजीव गोस्वामीने भक्तिसन्दर्भमें अध्यात्मिक ज्ञानवादियोंके प्राप्य तत्त्वका निरूपण इस प्रकार किया है—

प्रथमतः श्रोतृणामेव विवेकस्तावानेव यावता जगदतिरिक्तं चिन्मात्रं वस्तूपस्थितं भगवति। तस्मिंश्चिन्मात्रेपि वस्तुनि ये विशेषाः स्वरूपभूतशक्ति-सिद्धाः भगवत्त्वादिरूपा वर्तन्ते तांस्तु ते विवेक्तुं न क्षम्यन्ते। यथा रजनी-खण्डिनी ज्योतिर्मात्रत्वेपि ये मण्डलान्तर्बहिश्च दिव्य-विमानादि-परस्पर-पृथग् भूत-रश्मि-परमाणु-रूपा विशेषा स्तांश्चर्म-चक्षुष स्तद्वत्। पूर्ववच्च यदि महतः कृपाविशेषेण दिव्य-दृष्टिता भवति तदा विशेषोपलब्धिश्च भवेत्, न च निर्विशेष-चिन्मात्र-ब्रह्मानुभवेन तल्लीन एव भवति। इदमेव स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते इत्यनेन श्रीगतासूक्तं। स्वस्य शुद्धस्य आत्मनो भावो भावना आत्मनाधिकृत्य वर्त्तमानत्वात् अध्यात्म-शब्देनोच्यते इत्यर्थः ॥"

श्रीरूप गोस्वामीके इन वाक्योंका तात्पर्य यह है कि 'अतन्निरसन'-वृत्ति द्वारा जब आध्यात्मिक ज्ञान होता है, तब मायाके अतिरिक्त चिन्मात्र वस्तुका दिग्दर्शन मात्र होता है। परन्तु उसके भीतर जो चिद्विशेष है, उसका दर्शन नहीं होता। यदि उस समय सविशेष तत्त्वविद् वैष्णव गुरु मिल जाँय तभी ब्रह्मलयरूप अनर्थसे रक्षा हो सकती है।

केवल योग मार्गके अनुसार जो तत्त्वका अनुशीलन करते हैं, वे अंतमें विश्वव्यापी परमात्मतत्त्व तक पहुँच पाते हैं, शुद्ध भगवतत्त्व तक नहीं पहुँच पाते। परमात्मा ईश्वर, सगुण विष्णु आदि समस्त शब्द योगमार्गके अनुसंधेय हैं। इस मार्गमें भक्तिके कतिपय लक्षण पाये जाते हैं, परन्तु शुद्धभक्ति नहीं। साधारणतः भागवत-धर्मके नामसे संसारमें जितने भी धर्म हैं, वे सभी परमात्मानुसंधान रूप योग विशेष हैं। ये सब अंतमें भागवत धर्म तक पहुँचा ही देंगे—ऐसी आशा नहीं की जा सकती। क्योंकि योग-मार्ग की सोपानोंसे तत्त्व वस्तु तक पहुँचनेमें बहुत सी बाधाएँ हैं तथा अन्तमें अहंग्रहोपासना द्वारा केवल आध्यात्मिक ज्ञानके गढ्ढेमें ही गिरनेकी अधिक संभावना होती है। इस मार्गमें परमेश्वरके नित्य विग्रहका दर्शन और चित्-तत्त्वके विशेषधर्मकी प्राप्ति का सुयोग नहीं है। उपासनाकालमें जिस विग्रहकी कल्पनाकी जाती है, वह या तो विराट मूर्त्ति होती है अथवा हृदयके मध्यस्थित हिरण्य-गर्भ-मूर्त्ति होती है। वास्तवमें उन मूर्त्तियोंकी नित्यता नहीं है। इसे परमात्म-दर्शन कहते हैं। आध्यात्मिक ज्ञानकी अपेक्षा यह मार्ग श्रेष्ठ होने पर भी, यह सर्वांग सुन्दर और सिद्ध मार्ग नहीं है। अष्टांगयोग, हठयोग, कर्मयोग आदि योग समूह इसी मार्गके अन्तर्गत हैं। राजयोग या अध्यात्मयोग कुछ हद तक इस मार्ग पर स्थित होने पर भी अधिकांश क्षेत्रोंमें ज्ञानमार्गके ही अन्तर्गत है। सिद्धान्त यह है कि परमात्म दर्शनको शुद्ध भक्ति नहीं कहा जा सकता। इस विषयमें 'भक्ति-

सन्दर्भ' में कहा गया है—'अन्तर्यामित्वमय-माया शक्तिप्रचुर-चिच्छक्त्यंश-विशिष्टं परमात्मेति ।" अन्तर्यामित्वमय माया शक्तिबहुल चिच्छक्तिके अंश-विशिष्ट तत्त्वका नाम परमात्मा है।

जगत्की सृष्टि होनेके पश्चात् भगवान्का जो अंश मायाशक्तिके अधीश्वर रूपसे जगतमें प्रवेश कर जगतके नियामकरूपमें विराजमान हैं, वे ही जगदीश्वर या विश्वव्यापी-पुरुष हैं। इसलिये परम नित्य भगवत्तत्त्वसे इस तत्त्वकी न्यूनता स्वतःसिद्ध है।

केवल-भक्तिमार्ग द्वारा जो तत्त्व लक्षित होता है, उसीका नाम भगवान् है। भक्तिसंदर्भमें भगवत्तत्त्वका लक्षण इस प्रकार लिखा है—

परिपूर्ण-सर्वशक्ति-विशिष्ट भगवानिति ।

सम्पूर्ण चिन्मय सर्व-शक्तियोंसे युक्त तत्त्वका नाम—'भगवान्' है। वे जगत्की सृष्टि हो जाने पर परमात्मारूप अंश द्वारा जगत्में अनुप्रविष्ट होकर समस्त विराड्रान्तर्यामी स्वरूपमें एवं जीवोंके अन्तर्भूत होकर क्षिरोदकशायी और गर्भोदकशायीके रूपमें विराजमान हैं। पुनः समस्त मायिक जगत्के व्यतिरेक तत्त्वरूप निर्विशेष आविर्भाव द्वारा ब्रह्मस्वरूपमें प्रकाशित होते हैं। अतएव भगवान् ही मूलतत्त्व और परिपूर्ण वस्तु विशेष हैं। उनका स्वरूप-विग्रह चिन्मय है। सम्पूर्ण आनन्द उनमें निवास करता है। उनकी शक्ति अचिन्त्य और अवितर्क्य है, वह किसी जीव-ज्ञानगत विधिके अधीन नहीं है। उसी अचिन्त्य शक्तिके प्रभावसे समग्र विश्वका और विश्वमें स्थित जीव-समूहका प्रादुर्भाव हुआ है। जीव-शक्तिसे उत्पन्न जीव-समूह उनका (भगवान्का) एकान्त आनुगत्यधर्म अर्थात् उनकी सेवा प्राप्त कर कृतार्थ हो जाता है। उस आनुगत्यधर्मकी नामभक्ति ही अपने चिन्मय नेत्रोंसे भगवान्का असमोर्द्ध (जिसके न तो कोई बराबर हो और न जिससे कोई बड़ा ही हो) सौन्दर्य दर्शन कराती है। ज्ञान और योग भगवान्का स्पर्श करनेमें समर्थ नहीं हैं। ज्ञानको भगवत्तत्त्वके साथ जोड़ देनेसे यह तत्त्व स्वरूपहीन ज्योति-स्वरूप ब्रह्मके रूपमें प्रतीत होता है। यदि उनको योग मार्गसे देखा जाय तो वे जड़ जगत्में छिपे हुए परमात्मा-स्वरूपमें दीख पड़ते हैं। भक्ति अतिशय पवित्र वस्तु है। भक्ति कभी भी भगवत्ताकी हानि नहीं देख पाती। यदि कहीं देख भी लेती है, तो उसको सहन नहीं कर पाती।

परमतत्त्वके इन त्रिविध आविर्भावोंमें भगवत्तत्त्व-रूप आविर्भाव ही भक्तिका विषय है। परन्तु भगवदाविर्भावमें भी एक प्रकारका तात्त्विक भेद है। जहाँ स्वरूपशक्तिका पूर्ण ऐश्वर्य प्रकाशित है, वहाँ भगवदाविर्भाव परव्योमनाथ देवदेव नारायण स्वरूपमें प्रकाशित होते हैं। और जहाँ स्वरूप-शक्तिका पूर्णमाधुर्य प्रकाशित है, वहाँ भगवदाविर्भाव श्रीकृष्ण रूपमें प्रकाशित होते हैं। ऐश्वर्य सभी जगह बलवान होने पर भी माधुर्यके प्रभावसे हीनप्रभ हो पड़ता है। जड़ जगतमें इस विषयकी कोई तुलना नहीं है, उसका कोई भी उदाहरण नहीं दिखलाई पड़ता। जड़ जगत्में ऐश्वर्य माधुर्यसे अधिक बलवान होता है। परन्तु चिज्जगत्में ठीक इसके विपरीत होता है। वहाँ ऐश्वर्यकी अपेक्षा माधुर्य श्रेष्ठ और अधिक शक्तिशाली होता है। हे अन्तरङ्ग भक्तगण! आपलोग एकबार ऐश्वर्यका ध्यान कर पीछे माधुर्य तत्त्वको हृदयमें प्रेमके साथ लाकर देखें; ऐसा करनेसे यह तत्त्व समझ सकते हैं। जिस प्रकार जड़ जगतमें सूर्यके प्रकाशमें चन्द्रमाका प्रकाश लीन हो जाता है, हृदयमें माधुर्य-स्वाद उदित होने पर ऐश्वर्यका स्वाद अच्छा नहीं लगेगा। इसीलिये श्रीरूप गोस्वामीने लिखा है—

सिद्धान्ततस्त्वभेदेऽपि श्रीश-कृष्ण स्वरूपयोः ।
रसेनोत्कृष्यते कृष्णरूपमेषा रसस्थितिः ॥

नारायण और कृष्ण-स्वरूप सिद्धान्तके विचारसे अभेद होने पर भी बलकी अधिकता द्वारा कृष्ण रूप ही श्रेष्ठ है। क्योंकि रसतत्त्वकी ऐसी ही महिमा है। आगे यह सब तत्त्व क्रमशः स्पष्ट होता जायगा। यहाँ पर एकमात्र यही ज्ञातव्य है कि श्रीकृष्णके सम्बन्धमें आनुकूल्यमय अनुशीलन ही भक्तिका स्वरूप लक्षण है। जो बात मूल श्लोकमें कही गयी थी, यह सिद्ध हो गयी। (क्रमशः)

—ॐविष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुर

श्रीचैतन्य महाप्रभु

मंगलाचरण

छन्द—जय शशिमुख शोभी कंज नैना रसीले, तन कुवलय का सा वस्त्र पीले छबीले ।
सिय संग छवि पाते आनि वाले हठीले, धनु सर करधारी भक्ति देदे गुनीले ॥

दोहा—पंच वदन सुत इक रदन, सदन शील सुख खान ।
महाप्रभू चैतन्य का, चरित कहों धर ध्यान ॥

प्रारम्भ

पुष्पोद्यान सुहात गुच्छ फल के वल्ली सुपल्लव युता ।
मृदुभाषी तटवाहिनी सुसरिता चल हैं तरंगावली ॥
नारी थीं घन रूप आढ्य महिमा फैली सुचन्द्रा समा ।
मायापति अवतीर्ण भूमि सुखदा मायापुरी चिन्मयी ॥१॥
थे जन्मे द्विज मिश्र इन्द्र नृप से आख्या पुरंदर रही ।
वामांगी शचिसी सुपन्न मति की विम्वाधरा शशिमुखी ॥
काले कुंचित केश कंध लटकैं फैले भुजंगी समा ।
थे चंचल चित चोर चक्षु समता पाता न पंकज कभी ॥२॥
थीं जन्मी जलजात जातरूपी जाता सुमहिमा मयी ।
संख्या अष्ट सुपुष्ट देह तिनकी शोभा विधाता रची ॥
आया अन्त तुरन्त हस्त अन्तक, माता विदग्धा महा ।
मानों पंकज पाथ हीन मुरझे कैंधौं तुषारावृता ॥३॥
शोभावान सुजान सौख्य सरसी सौन्दर्य प्रतिमूर्ति थे ।
लाजैं सोम निहार व्योम तल पै कंचन कली भूमि की ॥
संवत सौ तिथि वर्ष और व्याली राका निशा फाल्गुनी ।
थे जन्मे पर चन्द्र चारु भूपै इन्दू विधुन्तुद ग्रसा ॥४॥

दोहा—नभ का सोलह कला युत, चौसठ अवनि महान ।
नित घटती बढ़ती कला, प्रभु की सदा समान ॥५॥

छन्द—फूले मानव बाल वृद्ध वनिता मानों सभी मस्त थे ।
गाते थे गुन गान कानि कुल के, वन्दी बने देवता ॥
कीने नृत्य अनूप रूप शशि सी देवांगना पी युता ।
मानों नाचत हेर हेर जलदा केकी कलापी करी ॥६॥
पाया बालक गेह नेह प्रतिमा तारा पती दूसरा ।
माता तात निहारि पूत तन को डूबे खुशी सिन्धु में ॥
मानों पावत राशि दीन दुखिया रोगी सुधा बिन्दु को ।
या पाया प्रिय पाथ जात अलिने आली प्रिया प्रेम को ॥७॥

रोते थे शिशु बाल भाव सुलभा, चेष्टा करें नारियाँ ।
लेतीं अङ्क उठाय गान करतीं बाजें कभी तालियाँ ॥
होते थे नहिं मौन मौन करते जौंलों हरी नाम को ।
ऐसे ही नित खेल गेह करते, लीला पती ईश थे ॥ ८ ॥
बेला पावन बाल नामकरणा आई प्रसन्नाकरी ।
बिश्वम्भर बने बिश्व पालक सदा सीता निमाई रखा ॥
गौराङ्ग हरिगौर कृष्ण जग में, पावें सुनामावली ।
गातीं गीत विभोर भाव नदमें, नारी निराली बनी ॥ ९ ॥
पृष्ठे सोहत शेषदेव बनते थे शेषशायी कभी ।
देते मोक्ष नितान्त चोर जनको खाते द्विजन्ना कभी ॥
पाते मोद प्रमोद बाल वनिता लीला दिखाते नई ।
सीखी विद्या भव्य भाव सहिता, शाला अनौखी हुई ॥१०॥

दोहा—विश्वरूप विश्वंभर दोनों ही मति मान ।
सभी शास्त्र वेदांग सब, सीखे बने सुजान ॥११॥

छन्द—जातीं थीं सुकुमारि नारि तट पै गङ्गा नहाने सभी ।
दूँगा मूँ वर दासि जन्हुतनया पूजो कुमारी मुझे ॥
खाते छीन तुरन्त भोग सबका खीझें लली रोष से ।
हेरे रूप अनूप मिश्र सुतका रीझें सभी तोष से ॥१२॥
भ्राता थे बुधिमान खान गुनके ज्ञाता सभी शास्त्रके ।
पाया ज्ञान असार स्वप्न सुखसी भू है निराली बनी ॥
त्यागा गेह सनेह रज्जु विहिता, सीधे संन्यासी बने ।
माजा पाकर मौन पाथ तजिकें, माता पिता दीन थे ॥१३॥
भ्राता के भव त्याग बाद पढ़ने जाते निमाई सदा ।
माता तात विचार खेद सुतका देते नहीं वे विदा ॥
मानो तात हमार चैन कुछ तो छोड़ो नहीं गेह को ।
जोड़ा है जिसको निमाइ तुमने तोड़ो नहीं नेह को ॥१४॥

दोहा—त्यागे गृह को नहिं लला, भ्रम छाया मन माहिं ।
सुधावचन से नित्य प्रति, उसको रहें सराहि ॥१५॥

छन्द—आया पावन काल बाल शचिका यज्ञोपवीती बना ।
पाया ब्राह्मण तेज बाल रविसा प्यारा मनो भावना ॥
होते थे दिन शेष सौख्य सहही पाते नहीं मान को ।
लेते थे गुन लाभ मान जन से गाते हरी गान को ॥१६॥

(क्रमशः)

—श्रीशङ्करलाल चतुर्वेदी, एम० ए०, साहित्यरत्न

अचिन्त्यभेदाभेद

[पूर्व-प्रकाशित वर्ष ४, संख्या ४, पृष्ठ ८४ से आगे]

विद्याविनोद महाशयका उपरोक्त प्रश्न सुनकर हँसी आती है। केवल यही नहीं, अत्यन्त, विस्मित और दुःखित भी होना पड़ता है। महाशयजी ने स्वयं बारह वर्ष पहले प्रायः ३५० पृष्ठोंमें "वैष्णवाचार्य श्रीमध्व"—नामक एक ग्रन्थ लिखा है। उस ग्रन्थमें उन्होंने यह प्रमाणित किया है कि गौड़ीय-वैष्णव-सम्प्रदाय श्रीमन्मध्वाचार्य सम्प्रदायके अन्तर्गत है। इस ग्रन्थके शेष भागमें अर्थात् २८ वें अध्याय में 'श्री-ब्रह्म-माध्व-गौड़ीय सम्प्रदाय'शीर्षकयुक्त निबन्धमें इन्होंने ३४ पृष्ठोंमें (पृष्ठ २४१ से २७५ तक) विस्तारपूर्वक आलोचना करके अत्यन्त दृढ़ताके साथ उसे प्रमाणित किया है। परन्तु सुदीर्घ द्वादश वर्षका समय बीत चुका है। इतने लम्बे समयके पश्चात् उक्त ग्रन्थके सिद्धान्त-को भूल जानेकी ही संभावना है। १२ वर्ष एक युग होता है। युग-परिवर्त्तनके साथ साथ बहुत कुछ परि-वर्त्तन हो जाता है। सत्ययुगके बाद क्रमशः कलियुग-का आविर्भाव हुआ करता है; अतएव युगपरिवर्तन होनेपर कलिके प्रभावसे सत्यका लोप और असत्यका प्रसार होने लगता है। संभव है, विद्याविनोद महा-शयके सम्बन्धमें भी यही हुआ हो अर्थात् कलिके समस्त दोष उनके सिर पर सवार हो गये हैं। जैसा भी हो, महाजन पुरुषोंका कथन है—'गोपनेते अत्या-चार गोरा धरे चुरी।' अर्थात् छिपा-छिपाकर अत्या-चार करने पर भी भगवान गौरचन्द्र उसे पकड़ लेते हैं। विद्याविनोद महाशयने अपने 'वाद' ग्रन्थमें 'वैष्ण-वाचार्य श्रीमध्व' ग्रन्थका कहीं भी उल्लेख नहीं किया है। इसका कारण यह है कि इस ग्रन्थका उल्लेख करने से उनके 'अचिन्त्यभेदाभेदवाद'-ग्रन्थका मूल उद्दे-श्य—'गौड़ीय सम्प्रदाय ब्रह्म-माध्व सम्प्रदायके अन्त-र्गत नहीं है'—किसी प्रकार भी साधित नहीं हो पाता। शिक्षित-समाजमें इन दोनों ग्रन्थोंको आस-पास रख कर विचार करनेसे विद्याविनोदकी नीचता, कपटता, गुरु-द्रोहिता, उनके असदुद्देश्य, वैष्णव-विद्वेष और पाप-प्रवृत्तिका पर्दा फास हो जायगा। मैं ऐसी दशामें विशेष जोरके साथ प्रतिज्ञा करके कह सकता हूँ कि उन्होंने जान-बूझ करके ही इस ग्रन्थका नाम छिपा रखा है।

'वैष्णवाचार्य श्रीमध्व' ग्रन्थ लिखनेके समय वे शुद्ध-वैष्णवोंकी देख-रेखमें पारमार्थिक जीवन व्यतीत कर ग्रन्थादिका संकलन किया करते थे। परन्तु आजकल हरि-गुरु-वैष्णव विद्वेषियोंके संगके प्रभावसे कालापहा-ड़की तरह उनकी मति भ्रष्ट हो गयी है। 'अचिन्त्यभे-दाभेदवाद' ग्रन्थके प्रत्येक पृष्ठमें, प्रत्येक अनुच्छेदमें वैष्णव-विद्वेषमूलक दुरभिसंधि, असत्-सिद्धान्त लिखे गये हैं; हम उनके एक-एक शब्दका, एक-एक अक्षरका प्रतिवाद करनेके लिये प्रस्तुत हुए हैं। ग्रन्थ-विस्तारके भयसे तथा पाठकोंकी धैर्य-च्युतिकी आशंका कर किसी-किसी क्षेत्रमें संक्षेप पद्धतिका अवलम्बन करनेके लिये बाध्य हुआ हूँ।

विद्याविनोद महाशय क्या यह कहना चाहते हैं कि पूर्वोल्लिखित उनका स्वरचित 'वैष्णवाचार्य श्रीमध्व'-ग्रन्थ सम्पूर्ण भूल है? यदि वे उस ग्रन्थको सम्पूर्ण-रूपसे भूल मानते हैं तथा वर्तमान अचिन्त्यभेदाभेद-वाद ग्रन्थको उक्त ग्रन्थका प्रतिवादमूलक ग्रन्थ मानते हैं, तो वे 'वैष्णवाचार्य श्रीमध्व'-ग्रन्थके विषयोंके मिथ्या-त्वके सम्बन्धमें साहसके साथ स्पष्ट शब्दोंमें ही तो ऐसा लिख सकते थे। और सरल रूपमें ही ऐसा कह सकते थे कि "मेरे पूर्व-लिखित सारे ग्रन्थ भूल हैं। 'पर विधि बलवान'—इस नीतिका अवलम्बन कर पाठकवर्ग मेरे पिछले ग्रन्थोंको ही प्रामाणित ग्रन्थ

मानेंगे।" परन्तु हमारा कहना है—श्री श्रीगुरुदेवके चरणोंके आश्रयमें रहकर उन्होंने जो प्रबन्ध, निबन्ध और ग्रन्थ आदि लिखे थे, वे प्रबन्ध, निबन्ध और ग्रन्थ ठीक हैं, शुद्ध हैं और प्रमाणिक हैं। एवं पीछे गुरु पदाश्रय परित्याग कर जितने भी प्रबन्ध, निबन्ध और ग्रन्थ आदि उन्होंने लिखे हैं, वे सब-के-सब भूल हैं, असत् उद्देश्य-मूलक हैं और ईर्ष्या-द्वेष-हिंसा-अपराधमूलक हैं; इसलिये सर्वतोभावेन अपाठ्य हैं। मैंने उनके ४०० पृष्ठके 'वाद'-ग्रन्थमें उक्त ग्रन्थका कहीं भी उल्लेख नहीं देखा। अधिकन्तु 'वैष्णवाचार्य श्रीमध्व'-ग्रन्थकी प्रमाणिकता स्वीकार करते हुए उसके २७ वें अध्यायका कुछ अंश 'वाद'-ग्रन्थमें उद्धार किये हैं। बड़े आश्चर्यकी बात है कि एक युग अर्थात् बारह वर्ष बीतने पर भी वे उस ग्रन्थकी बात भूल नहीं पाये हैं। यहाँ तक कि उन्होंने इस प्रश्नको उठाते समय ही 'वैष्णवाचार्य श्रीमध्व'-ग्रन्थका प्रमाण उद्धृत करके भी, कहाँ से यह प्रमाण लिया गया है, इसे जान बूझकर स्वेच्छापूर्वक छिपाया है, उसका परिचय नहीं दिया है। उक्त 'वाद'-ग्रन्थके २४३-४४ पृष्ठमें श्रीबलदेवविद्याभूषण पादके मतका प्रतिवाद करनेके उद्देश्यसे 'वैष्णवाचार्य श्रीमध्व-ग्रन्थके २७ वें अध्यायके पृष्ठ २०६-२०७ से जो अंश उद्धृत हुआ है, उसे पाठकोंकी जानकारीके लिये यहाँ उद्धृत किया जा रहा है—

"विख्यात मध्वमतमें—श्रीलक्ष्मीजी विष्णुकी प्रिय महिषी हैं, ज्ञानानन्दात्मक-नित्य-देहविशिष्ट हैं, विष्णुकी तरह वे भी गर्भवास-दुःख आदि दोषोंसे रहित हैं; सर्वत्र विष्णुके साथ अवस्थित हैं, सर्वत्र व्याप्त हैं, विष्णुके अनन्त रूपोंके साथ श्रीलक्ष्मी भी अनन्त रूपोंमें विहार करती हैं, विष्णुके अवतारके समय लक्ष्मी भी अवतीर्ण होकर उस अवतारकी प्रिय सङ्गिनीके रूप में विराजमान रहती हैं, विष्णुकी तरह लक्ष्मीजीके भी विभिन्न नाम और रूप हैं। (श्रीमध्वकृत बृहदारण्यक-भाष्य,' ३।५) लक्ष्मीदेवी— ❀ ❀ ❀ विष्णुकी अधीना, सर्वविद्याभिमानिनी और चतुर्मुख ब्रह्मासे अनेक गुन श्रेष्ठ हैं। वे विविध प्रकारके आभूषणोंके रूपमें भगवान्‌के अंगोंमें विराजमान रहती हैं। विष्णुकी शय्या, आसन, सिंहासन, आभूषण, आदि समस्त भोग्य वस्तुएँ लक्ष्म्यात्मक ही हैं। (ब्र.सू. ४।२।१ सूत्रके 'अणुव्याख्यान' में धृत भागवत २।६।१३ श्लोक) (क)

यहाँ "विख्यात श्रीमध्वमतसे"—से लेकर "नित्य-नाम और रूप हैं" तक का अंश "वैष्णवाचार्य श्रीमध्व"—ग्रन्थमें 'लक्ष्मी'—शीर्षक लेखके प्रारंभमें ही २०६ पृष्ठमें लिपिबद्ध हुआ है। विद्याविनोद महाशयने उक्त अंशको 'वैष्णवाचार्य श्रीमध्व'-ग्रन्थसे ही उद्धार किया है।—इसे छिपाकर उन्होंने इसे श्रीमध्वकृत 'बृहदारण्यक-भाष्य' अ. ३, ब्रा. ५ से उद्धृत बतलाया है। वास्तवमें मध्वकृत 'बृहदारण्यक-भाष्यके तृतीय अध्याय, पंचम ब्राह्मणमें इस प्रकारकी कोई भी उक्ति लिपिबद्ध है—हम देख नहीं पाते। विद्याविनोद महाशयकी यह उक्ति श्रीबलदेव विद्याभूषण प्रभुके तत्त्वसन्दर्भके २८ वें अनुच्छेदके मध्वके 'मतविशेष'वाक्यकी टीकाका प्रतिवाद स्वरूप है। वे कहना चाहते हैं कि 'श्रीबलदेव विद्याभूषण प्रभुने मध्यमतके सम्बन्धमें अनभिज्ञतावश श्रीलक्ष्मीदेवीको जीवकोटिमें उल्लेख किया है, किन्तु श्रीमध्वने कहीं भी ऐसी बात नहीं कही है। अतएव बलदेवका उक्त विचार यथार्थ नहीं है। 'वाद' लेखक के इस मिथ्या अभियोगके सम्बन्ध में मैं नीचे दो-एक बातें निवेदन कर रहा हूँ।

मैं यहाँ पर श्रीबलदेवप्रभुके सम्बन्धमें कही गयी विद्याविनोद महाशयकी एक उक्तिके प्रति पाठकोंकी दृष्टि आकर्षित कर रहा हूँ। उन्होंने उक्त वाद ग्रन्थके १३ वें प्रसंगके १६३ पृष्ठमें लिखा है—'तत्त्ववादी सम्प्रदायके भूतपूर्व शिष्य श्रीबलदेव विद्याभूषणने पीछेसे गौड़ीय-वैष्णव सम्प्रदायमें प्रवेश कर तत्त्ववादगुरु श्रीमन्मध्वाचार्यके आम्नाय (सम्प्रदाय) के

(क) सुन्दरानन्द कृत 'अचिन्त्यभेदाभेदवाद', २४३-४४ पृष्ठकी पादटीकासे लिये गये वाक्य। (यह अंश विद्याविनोद कृत 'वैष्णवाचार्य श्रीमध्व' ग्रन्थके पृष्ठ २०६ और २०८ से उद्धृत है)

साथ श्रीकृष्णचैतन्य देव और उनके श्रीचरणाश्रितोंको शिष्य-परम्परा और उनके दार्शनिक सिद्धान्तोंकी संगति दिखलानेकी चेष्टा की है।' उन्होंने और भी लिखा है—'पहले शंकर-भाष्यादिका अध्ययन कर श्रीमन्मध्व भाष्य का भलीभाँति अध्ययन किये। उसी समय वे (बलदेव) तत्त्ववादियोंके शिष्य होकर मध्व-सम्प्रदायमें प्रविष्ट हुए। ❀ ❀ ❀ श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्रमें पण्डितोंको पराजित करते हुए वे तत्त्ववादी मठमें विराजमान थे। इत्यादि ❀

सुन्दरानन्द इसके द्वारा यह प्रमाण करना चाहते हैं कि,—श्रीबलदेव विद्याभूषण गौड़ीय वैष्णव नहीं थे, बल्कि मध्वाचार्यके तत्त्ववादी सम्प्रदायके शिष्य-मात्र है एवं वे मध्वभाष्यका अच्छी तरहसे अध्ययन करके उसके विचारोंसे प्रभावित हो पड़े थे। यदि बलदेव मध्व-भाष्यका अच्छी तरहसे अध्ययन किये थे और मध्वसम्प्रदायका शिष्य बनकर तत्त्ववादी मठमें ही रहा करते थे—इस बातको सत्य मान लिया जाता है, तो ऐसा होनेसे 'बलदेव मध्व-सम्प्रदायके 'मत-विशेषकी व्याख्या करनेमें भूल कैसे कर सकते हैं? अथवा तर्कके लिये यदि ऐसा मान भी लिया जाय कि उन्होंने वास्तवमें भूल ही किया है, तो यह समझना होगा कि बलदेव मध्वसम्प्रदायके उपयुक्त शिष्य नहीं थे एवं तत्त्ववादके 'मत-विशेष' के सम्बन्धमें उनकी वैसी पूरी अभिज्ञता नहीं थी। अतएव वे तत्त्ववादी मठमें रहते थे और मध्व-सम्प्रदाके किसी आचार्यके शिष्य थे—आदि बातें सम्पूर्ण निराधार, काल्पनिक और अयुक्ति संगत है।

वास्तवमें श्रीबलदेव विद्याभूषण श्रीश्रीगौर-नित्यानन्द प्रभुकी एवं पश्चात् श्रीश्रीजीव गोस्वामी पादकी विशुद्ध आम्नाय-धारामें अवस्थित हैं। भागवत-परम्पराके अनुसार वे श्रीश्रीनित्यानन्द प्रभुसे नवीं पीढ़ीमें और पांचरात्रिक परम्पराके अनुसार श्रीनित्यानन्द प्रभुसे आठवीं पीढ़ीमें स्वीकृत हैं। ऐतिहासिकोंने उनकी पांचरात्रिक परम्पराको निम्नलिखित रूपमें स्थिर किया है—

श्रीमन् नित्यानन्द प्रभुके शिष्य श्रीगौरीदास पंडित हैं, उनके शिष्य श्रीहृदयचैतन्य; हृदयचैतन्य प्रभुके शिष्य श्रीश्यामानन्द प्रभु हैं; उनके शिष्य श्रीरसिकानन्द; रसिकानन्द प्रभुके शिष्य श्रीनयनानन्द और उनके शिष्य राधा-दामोदर हैं। ये श्रीलजीवगोस्वामी-कृत षटसन्दर्भके सर्वप्रधान पण्डित आचार्य थे। श्रीबलदेवविद्याभूषण प्रभु उक्त विख्यात् श्रीराधा-दामोदर प्रभुके ही दीक्षित शिष्य थे और श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरके सर्व-प्रधान शिक्षा-शिष्य थे। यह सर्ववादी सम्मत ऐतिह्य है। माध्य-गुरु-परम्पराकी किसी भी शाखा में उनके जैसा बड़ा दिग्विजयी पंडित का नाम नहीं दिखलाई पड़ता। बलदेव प्रभु मध्वाचार्य सम्प्रदायकी तत्कालीन पण्डित-मण्डलीकी अपेक्षा अनेक गुन श्रेष्ठ शास्त्रज्ञ पण्डित थे—इतिहासकारोंने ऐसा उल्लेख किया है। उस समय बलदेव जैसा नैयायिक, वैदान्तिक, पुराण-इतिहासादि शास्त्रोंका ज्ञाता भारतके किसी भी सम्प्रदायमें कहीं भी नहीं था। उनका जन्म उड़िसा प्रदेशमें हुआ था। उनके समयमें श्रीपुरीधाममें श्रीमध्वाचार्यके सम्प्रदायकी अपेक्षा माध्यगौड़ीय-सम्प्रदायका ही अधिक प्रभाव था। इसलिये बलदेव जैसे महामहोपाध्याय जगद्वरेण्य विद्वान व्यक्तिके लिये महा प्रभावशाली माध्य-गौड़ीय-सम्प्रदायके वैष्णव आचार्यके चरणोंका अनुसरण करना ही युक्ति संगत और स्वाभाविक है। श्रीबलदेवने जिस तरहसे मध्व-भाष्यका भलीभाँति अध्ययन किया था, उसी प्रकारसे उन्होंने शंकर, रामानुज, भास्कराचार्य, निम्बार्क, वल्लभ आदिके भाष्योंका भी पुंखानुपुंख रूपसे अध्ययन किया था। उन्होंने उक्त दर्शन-समूहका अध्ययन किया था, इसीलिये वे तत्-तत् सम्प्रदाय-भुक्त हो पड़े हैं—ऐसी बात नहीं है। माध्व-गौड़ीय सम्प्रदायके अतिरिक्त किसी भी दूसरे सम्प्रदायमें उनसे अधिक बड़ा विद्वान वैष्णव विद्यमान न होनेके कारण

❀ अचिन्त्यभेदाभेदवाद पृष्ठ १८६-६०

उन्होंने उनका शिष्यत्व ग्रहण नहीं किया। विद्याविनोद महाशय एक असत् उद्देश्यको लेकर बलदेव विद्याभूषण प्रभुको मध्व-सम्प्रदायके अन्तर्भूत करनेका व्यर्थ-प्रयास किया है। उन्होंने अपने इस असत् उद्देश्यकी सिद्धिके लिये श्रीठाकुर भक्तिविनोदके एक प्रबन्धके कुछ अंश-का उल्लेख किया है। परन्तु उन्होंने उनके सम्पूर्ण प्रबन्धको प्रकाशित नहीं किया है। यदि वे ऐसा करते तो उनकी कलई खुल जाती। श्री भक्तिविनोद ठाकुर-ने अपने प्रबन्धमें बलदेव प्रभुको मध्वाम्नायमुक्त तत्त्व-वादी-शिष्य नहीं स्वीकार किया है। इस विषयमें हम पृथक सिद्धान्तमें विस्तारके साथ विवेचन करेंगे तथा श्री भक्तिविनोदठाकुरके सम्पूर्ण प्रबन्धको प्रकाशित कर यथार्थ तात्पर्य पर विचार करेंगे। (क्रमशः)

—ॐविष्णुपाद श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव महाराज

श्रीश्रीव्रजमंडल-परिक्रमाका विराट आयोजन

प्रिय महोदयगण!

श्री गौड़ीय वेदान्त समिति इस वर्ष भी पहले-पहले वर्षोंकी तरह श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ में आगामी १० कार्त्तिक, २७ अक्टूबर सोमवारसे श्रीउर्जव्रत (कार्त्तिक व्रत) का पालन करने जारही है। इसके उपलक्ष्यमें श्रीश्रीव्रजमण्डलकी परिक्रमाका विराट आयोजन किया गया है। समितिके प्रतिष्ठाता एवं आचार्य परमहंस-मुकुटमणि परिव्राजकाचार्य १०८ श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजी बहुतसे साधु-संत,भक्त और सज्जन मण्डलीके साथ गया, काशी और प्रयाग आदि तीर्थोंसे होते हुए यहाँ पधार रहे हैं। प्रतिदिन श्रीमद्भागवत आदि शास्त्रोंके प्रवचन, संकीर्त्तन, वेद-वेदान्त और पुराणोंके पारंगत बड़े-बड़े विद्वानों और संतोंके भाषण तथा धाम-परिक्रमाका सुन्दर कार्यक्रम है, जो १० अग्रहायण, २६ नवम्बर तक एक महीना चालू रहेगा।

प्रार्थना है, आप इष्ट-मित्रों और बन्धुजनोंके साथ यहाँ प्रतिदिन पधार कर अथवा पूर्ण रूपसे योगदान कर भक्ति-उन्मुखी सुकृति अर्जन करें।

निवेदक—

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके सभ्यवृन्द

दैनिक कार्यक्रम

उषाकालमें—मंगलारति, कीर्त्तन।
प्रातःकालमें—प्रवचन और व्याख्या।
पूर्वाह्नमें—परिक्रमा, नगर संकीर्त्तन।
मध्याह्नमें—भोग आरति, राजभोग दर्शन।
अपराह्न—सत्संगमें हरिकथा, परिक्रमा।
संध्यामें संध्यारति, प्रवचन, भाषण, कीर्त्तन।
९ बजे रात तक—छायाचित्र द्वारा श्रीकृष्ण लीला, श्रीगौर लीला और रामलीला-प्रदर्शन।

त्रिविध शास्त्र और मायावाद आदि मत

भगवती पार्वती देवीने महेश्वरसे जिज्ञासा की—पाषंडी पुरुषोंका लक्षण क्या है? आप कृपा करके मुझे बतलाइये।

रुद्रने कहा—

येऽन्यं देवं परत्वेन वदन्त्यज्ञानमोहिताः।
नारायणाज्जगन्नाथात् ते वै पाषण्डिनस्तथा॥
कपाल-भस्मास्थिधरा ये ह्यवैदिक लिंगिनः।
ऋते वनस्थाश्रमाच्च जटा-वल्कल धारिणः॥
अवैदिक-क्रियोपेतास्ते वै पाषण्डिनस्तथा।
शङ्ख-चक्रोर्द्ध पुण्ड्रादिचिह्नैः प्रियतमैर्हरेः॥
रहिता ये द्विजा देवि! ते वै पाषण्डिनस्मृताः।
श्रुति स्मृत्युदिताचारं यस्तु नाचरति द्विजः॥
समस्त-यज्ञ-भोक्तारं विष्णुं ब्रह्मश्च दैवतम्।
उद्दिश्य देवता एव जुहोति च ददाति च॥
स पाषण्डीति विज्ञेयः स्वतन्त्रश्चापि कर्मसु।
स्वातन्त्र्यात् कुरुते यस्तु कर्म वेदोदितं महत्॥
यस्तु नारायणं देवं ब्रह्म-रुद्रादि-दैवतैः।
समत्वेनैव वीक्षेत स पाषण्डी भवेत् सदा॥
अवस्था-त्रितये यस्तु मनोवाक्-काय-कर्मभिः।
वासुदेवं न जानाति स पाषण्डी भवेद्विजः॥
किमत्र बहुनोक्तेन ब्राह्मणा येऽप्यवैष्णवाः।
न स्पृष्टव्या न वक्तव्या न द्रष्टव्या कदाचन॥

(पद्मपुराण)

जो अज्ञान द्वारा मोहित होकर सम्पूर्ण विश्वके मालिक जगन्नाथ नारायणके अतिरिक्त दूसरे-दूसरे देवताओंको पर-देवता अर्थात् सर्व श्रेष्ठ देवता मानते हैं, वे पाषंडी हैं। कपाल पर भस्म और अस्थि आदि अवैदिक चिह्नोंको धारण करनेवाले और वानप्रस्थमें स्थित पुरुषोंको छोड़कर अन्यान्य आश्रमोंमें स्थित जो लोग जटा और वल्कल आदि धारण करतः अवैदिक कर्मोंमें निरत रहते हैं, वे पाषण्डी हैं। श्रीहरिके प्रियतम चिह्न शंख-चक्र-ऊर्द्धपुण्ड्र आदिसे रहित ब्राह्मण पाषण्डी हैं। जो ब्राह्मण श्रुति-स्मृतिके अनुसार आचरण नहीं करते—सम्पूर्ण यज्ञोंके एकमात्र भोक्ता ब्रह्मरुद्रादेव विष्णुके उद्देश्यसे होम और दानादि कार्य नहीं करते, वैदिक क्रियाओंका अनुष्ठान स्वेच्छाचारी होकर करते हैं, जो नारायण को ब्रह्मा, रुद्र आदि देवताओंके समान दर्शन करते हैं, वे पाषण्डी हैं। जो त्रिविध अवस्थाओंमें शरीर, मन, वाणी और कर्मसे एकमात्र वासुदेवको ही उपास्य नहीं जानते, वे ब्राह्मण पाषण्डी हैं। अधिक कहनेकी आवश्यकता ही क्या है—जो ब्राह्मण अवैष्णव हैं, उनका दर्शन करना, स्पर्श करना या उनके साथ संभाषण करना भी उचित नहीं है।

इस बातको सुन कर देवी-भगवतीने पुनः जिज्ञासा की—हे देवश्रेष्ठ! इस विषयमें मुझे कुछ संशय हो रहा है, आप कृपा कर उसे दूर करें। आपने कहा है—कपाल पर भस्म और अस्थि धारण करना श्रुति विरुद्ध कार्य है, तो आप स्वयं ऐसा निन्दनीय आचरण क्यों करते हैं? मैं स्त्री-स्वभावसुलभ चपलतावश आपसे पूछ रही हूँ। आप महानुभव है, इसीलिये आपसे ऐसा पूछनेका साहस कर रही हूँ। यदि उत्तर देना अनुचित समझें, तो क्षमा करेंगे।

श्रीरुद्रने कहा—देवि! मैं अतिशय रहस्य युक्त और अद्भुत् कथा कह रहा हूँ। इस कथाको दूसरोंके निकट कदापि प्रकाश न करना। तुम्हें अपना अभिन्न-अङ्ग समझ कर ही इस परम गोपनीय रहस्यको बतला रहा हूँ।

स्वायंभुव मन्वन्तरमें नमुचि आदि कुछ दैत्य बड़े बलवान् हो उठे थे। वे निष्पाप जीवन व्यतीत करते थे, अर्थ, धर्म, काम—धर्मत्रयीका आचरण करते थे एवं (विष्णुके प्रियजनोंकी सेवासे रहित होकर)

विष्णु-सेवा परायण होनेके कारण देवताओंके भी अजेय हो पड़े थे। इन्द्रादि प्रधान-प्रधान देवता उनको जय करनेमें असमर्थ होकर बड़े भयभीत हो श्री-विष्णुके शरणमें गये। उन्होंने श्रीभगवान्‌के निकट निवेदन किया—'केशव! हम तपके प्रभावसे निष्पाप असुरोंको जय करनेमें असमर्थ हैं। आप कृपापूर्वक उनका विनाश करें।

देवताओंकी बात सुनकर भगवान्‌ने मुझे आदेश दिया—रुद्र! दैत्यगण मेरे भक्त हैं; इसलिये वे लोग देवताओंके अजेय हैं। तुम देव-द्वेषी दैत्योंको मोहित करनेके लिये पाषण्ड-आचरणका प्रचार करो, तामस पुराण आदि मोहजनक शास्त्रोंकी रचना कर उनका प्रचार करो। मेरे भक्त महर्षियोंको अपनी शक्तिसे बाध्यकर अपने इस कार्यकी सहायतामें नियुक्त करो। कणाद, गौतम, शक्ति, उपमन्यु, जैमिनी, कपिल, दुर्वासा, मृकण्डु, बृहस्पति, भार्गव और जमदग्नि तुम्हारी शक्तिसे प्रभावित होकर जगत्‌के हितके लिये बाध्य होकर तामस शास्त्रोंका प्रचार करेंगे। तुम भी कपाल-भस्म और अस्थि आदि चिह्नोंको धारण कर असुरोंको मोहित करनेके लिये पाशुपत-शास्त्रकी रचना करो। कङ्काल, शैव, पाषण्ड और महाशैव आदि नाना प्रकारके वेद-विरुद्ध मतोंका प्रवर्त्तन करनेसे सभी लोग कपाल-भस्मास्थिधारी हो जायेंगे, इसमें संदेह नहीं। तामस-शास्त्र तुमको ही श्रेष्ठ देवता स्थापन करेंगे। मैं भी तामस पुरुषोंको मोहित करनेके लिये प्रति युगमें तुम्हारी आराधना करूँगा। जो इस मतका अवलम्बन करेंगे, वे अवश्य ही पतित हो जायेंगे।

श्रीभगवान्‌की बात सुन कर मैं बड़ा ही दुःखित हुआ और दीनतापूर्वक कहा—हे प्रभो! यदि मैं आपकी आज्ञाका पालन नहीं करता, तो मेरा नाश अवश्य ही हो जायगा। एक तरफ आपकी ऐसी आज्ञाका पालन करना मेरे लिये अत्यन्त कठिन है; दूसरी ओर आपकी आज्ञाका उल्लंघन करना भी उचित नहीं। अतः ऐसी दशामें मेरा क्या कर्त्तव्य है? आप ही कृपा कर बतलाइये।

मेरी बातको सुन कर भगवान विष्णुने मुझको आश्वासन प्रदान करते हुए कहा—कोई चिन्ताकी बात नहीं है। देवताओंके हितके लिये ऐसा कार्य करनेसे तुम्हारे नाशकी कोई आशंका नहीं। तथापि मैं तुम्हारी रक्षाका उपाय बतला रहा हूँ—तुम नित्य प्रति मेरे सहस्रनाम और षड्क्षर तारक मन्त्रका जप करना। नीलकमल-दल-श्याम, कमलनयन, शङ्खासुरके अरि, शार्ङ्गधर, सर्व प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित, पीतवसन धारण करनेवाले, चतुर्भुज, जानकी-वल्लभ श्रीरामचन्द्रके मन्त्र—'श्रीरामाय नमः' का नित्य जप करनेसे निर्मल रहोगे। यह मंत्र समस्त दुःखोंका हरण करनेवाला और पापी व्यक्तियोंकोभी मुक्ति प्रदान करनेवाला है। और अस्थि धारण करनेसे जो अमङ्गल होगा, मेरे मंत्रका उच्चारण करनेसे वह नष्ट हो जायगा। मन-ही-मन मेरा अर्चन करना। मेरी आज्ञा का पालन करनेसे तुम्हारा सब प्रकारसे कल्याण होगा।

ऐसी आज्ञा देकर भगवानने देवताओंको विदा किया। ये लोग भी निर्भय होकर अपने-अपने आश्रमको लौट गये।

हे देवि! मैं देवताओंके हितके लिये पाषण्डी पुरुषोंका आचरण—भस्म और अस्थि धारण करता हूँ। तामस पुराणोंकी तथा पाषण्ड शैव शास्त्रोंकी रचना भी मैंने इसीलिये की है। मेरी शक्तिके प्रभावसे गौतम आदि ऋषियोंने भी असुर-मोहन शास्त्रोंका प्रकाश किया है। मेरे द्वारा प्रकाशित वेद-वाणियोंका अवलम्बन कर दैत्यगण तामस वृत्तियोंसे आच्छन्न होकर भगवद्विमुख हो गये। मांस और रक्तचन्दन द्वारा मेरी पूजा कर मुझसे वर प्राप्त होकर अत्यन्त विषयासक्त, कामी और क्रोध परायण हो गये। इस प्रकार क्षीण होने पर वे लोग देवताओं द्वारा सहज ही पराजित हो गये।

जो मेरे (महेश्वर शिवके) इस मतका अवलम्बन

करके संसारमें विचरण करेंगे, वे समस्त प्रकारके धर्मों-से रहित होकर नरक भोग करेंगे। मैं देव-द्वेषियोंको मोहित करनेके लिये बाह्यतः भस्म और अस्थि धारण करनेपर भी भीतर-ही-भीतर निरन्तर श्रीविष्णुका सहस्र नाम और उनका मंत्र जप करता हुआ सर्वदा आनन्दमें मग्न रहता हूँ।

पार्वती देवीने पुनः जिज्ञासा की—देव! तामस शास्त्र कौन-कौन हैं? आप कृपा कर मुझे बतलाइये।

श्रीमहादेवने उत्तर दिया—देवि! तामस शास्त्रों-का मैं वर्णन कर रहा हूँ, सुनो। इनके स्मरण-मात्रसे ज्ञानी पुरुषोंका भी पतन हो जाता है। मैंने सर्व-प्रथम तामसिक पाशुपत शैव शास्त्रका प्रचार किया। तदनन्तर मेरे शक्त्याविष्ट विप्रोंने जिन-जिन शास्त्रोंका प्रचार किया है, उनका भी श्रवण करो। कणादने वैशेषिक, गौतमने न्याय, कपिलने सांख्य और बृहस्पतिने चार्वाक मतका प्रचार किया है। श्रीविष्णुके शक्त्यावेशावतार बुद्धदेव और नग्ननीलपट आदिने दैत्योंके संहारके लिये बौद्धशास्त्रका प्रचार किया है। मैंने स्वयं कलिकालमें ब्राह्मणमूर्तिमें शंकराचार्यके नामसे आत्म-प्रकाश कर मायावाद रूप प्रच्छन्न बौद्ध असत् शास्त्रोंका प्रचार किया है। मैंने जगतका नाश करनेके लिये वेदमंत्रोंका विरुद्ध अर्थ दिखलाकर कर्म-त्याग और ईश्वर-जीव ऐक्यका प्रतिपादन किया है, स्वयंरूप ब्रह्मका निर्गुणरूप प्रकाश किया है, इत्यादि-इत्यादि अनेक अवैदिक अपसिद्धान्तों का स्थापन किया है। जैमिनीने भी वेदोंके कृत्रिम और अपकृष्ट अर्थका प्रचार किया है।

अब मैं तामस आदि पुराण कौन-कौन हैं, बतला रहा हूँ। अट्ठारह पुराणोंमें मत्स्य, कूर्म, लिंग, शैव, स्कन्द और अग्नि ये छः तामस पुराण हैं। ब्रह्म, ब्रह्माण्ड, ब्रह्मवैवर्त, मार्कण्डेय, भविष्य और वामन—ये छः राजस पुराण हैं। नारदीय, बराह, गरुड़, विष्णु, पद्म और श्रीमद्भागवत—ये छः सात्त्विक पुराण हैं। सात्त्विक पुराण—मोक्षप्रद हैं, राजस पुराण—स्वर्गप्रद हैं तथा तामस पुराण—नरकप्रद हैं। ऋषियों द्वारा प्रचारित स्मृतियाँ भी तीन प्रकार की हैं—सात्त्विक स्मृतियाँ, राजसिक स्मृतियाँ और तामसिक स्मृतियाँ। वशिष्ठ, पराशर, हारीत, व्यास, भारद्वाज और कश्यप द्वारा रचित स्मृतियाँ सात्त्विक हैं। याज्ञवल्क्य, अत्रेय, दाक्ष, कात्यायन, और वैष्णव स्मृति—राजस हैं एवं गौतम, बृहस्पति, सामवर्त, यम, शंख और उशना कृत स्मृतियाँ—तामस हैं।

अधिक क्या कहूँ, पुराण और स्मृतियोंमेंसे समस्त तामस शास्त्र सर्वदा नरकप्रद होते हैं। अतएव बुद्धि-मान पुरुष इन सबका परित्याग करेंगे।

(पद्म, उत्तर खण्ड)

—त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिभूदेव श्रौती महाराज

श्रीश्रीबद्री-केदार-परिक्रमा-संघका प्रत्यावर्त्तन

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके उद्योगसे यात्रियोंका एक दल हिमालयकी गोदीमें विराजमान श्रीश्री-बद्रीनारायण और श्रीकेदारनाथकी परिक्रमा कर विगत ६ आश्विन, २६ सितम्बर शुक्रवारको सकुशल हावड़ा लौट आया है। परिक्रमा संघका संचालन ॐविष्णुपाद परमहंस परिव्राजकाचार्यवर्य १०८ श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान-केशव गोस्वामी महाराजजीके निर्देशानुसार त्रिदण्डिस्वामि श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराज और श्रीपाद रसराज ब्रजवासी 'न्याय कोविद' ने बड़े ही सराहनीय ढङ्गसे किया है। यात्रियोंने दुर्गम-से-दुर्गम पथको बड़ी ही सरलतासे पारकर हरिद्वार, हृषिकेश, लक्ष्मण-झूला, देवप्रयाग, कीर्तिनगर, श्रीनगर, रुद्रप्रयाग, अगस्तमुनि, चन्द्रपुरी, गुप्तकाशी, गौरीकुण्ड, केदारनाथ, पीपलकोठी, गरुड़ गंगा, जोशीमठ, पञ्चबद्री, पञ्चशिला, विष्णु प्रयाग, तप्तकुण्ड, वसुधारा, नन्द-प्रयाग, आदि बद्री, व्यास गुफा और भीमशिला आदिका दर्शन किया है।

—निजस्व-संवाददाता.

जैव-धर्म

(पूर्व प्रकाशित वर्ष ४, संख्या ४, पृष्ठ ३६ से आगे)

भवापवर्गो भ्रमतो यदा भवे-
ज्जनस्य तर्ह्यच्युत सत्समागमः ।
सत्सङ्गमो यर्हि तदैव सद्गतौ
परावरेशे त्वयि जायते मतिः ॥ (क)

(श्रीमद्भा० १०।५१।५३)

बाबा ! अनादि माया-बद्धजीव संसारमें कभी देव योनिमें और कभी पशु आदि नाना योनियोंमें अनादि कालसे कर्मचक्रमें भ्रमण कर रहे हैं। यदि कभी पूर्व सुकृतिके प्रभावसे साधुसंग होता है, तब उसी समयसे निखिल कार्य-कारणके नियन्ता भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें जीवकी मति दृढ़तासे लग जाती है।'

ब्रजनाथ—'सुकृतिसे साधुसंग मिलता है; वह सुकृति क्या है ? वह कर्म है अथवा ज्ञान है ?'

बाबाजी—'शास्त्रमें शुभकर्मको 'सुकृति' कहा गया है। शुभ कर्म दो प्रकारके हैं—भक्ति-प्रवर्त्तक और अवान्तर फल-प्रवर्त्तक। नित्य-नैमित्तिक कर्म, सांख्यादि ज्ञान—यह सब कुछ आवान्तर फलको देनेवाली सुकृति है। सत्संग और भक्ति-जनक देशकाल और द्रव्यका संग ही—भक्ति-प्रद सुकृति है। भक्ति-प्रद सुकृति अधिक परिमाणमें इकट्ठी होने पर वह कृष्णभक्ति को पैदा करती है। आवान्तर-फलप्रद सुकृति अपने बदलेमें फल देकर निवृत्त हो जाती है। संसारमें जितने भी प्रकारके दान आदि शुभ कर्म हैं वे भोग रूप फल प्रदान करते हैं। ब्रह्मज्ञान-सम्बन्धी सुकृति मुक्ति-फल देती है; उक्त दोनों प्रकारकी सुकृतियाँ भक्ति-फल दान करनेमें समर्थ नहीं हैं। संत-पुरुषों का संग, एकादशी, जन्माष्टमी, गौर-पौर्णमासी आदि साधुभावको पैदा करने वाले काल, तुलसी, श्रीमन्दिर, महाप्रसाद, तीर्थ और साधु-वस्तुओंका दर्शन एवं स्पर्शन—यह सब क्रिया भक्तिप्रद सुकृति है।'

ब्रजनाथ—यदि कोई व्यक्ति सांसारिक दुःखोंसे मर्माहत होकर उससे छुटकारा पानेके लिये विवेकपूर्वक हरिके चरणोंमें शरणागत होता है, तो क्या उसे भक्ति प्राप्त नहीं होगी ?

बाबाजी—'यदि मायाके दुःखोंसे पीड़ित होकर विवेक बुद्धिद्वारा वह यह जान ले कि सांसारिक-धर्म—सभी बुरे हैं, भगवानके चरणकमल तथा शुद्ध-भक्त-जन ही उसके एकमात्र आश्रय हैं और ऐसा जानकर अनन्य गति होकर भगवानके चरण-कमलोंके प्रति धावित होता है, तब वह सबसे पहले भगवद्भक्तोंके चरणोंका आश्रय लेता है। उससे उसकी भक्तिप्रद मुख्य सुकृति होती है—उसीसे वह भगवान्‌के चरण-कमलोंको प्राप्त करता है। पहले-पहल उसने जो वैराग्य और विवेक प्राप्त किये थे, वे भक्तिकी प्राप्तिमें गौण उपाय थे। अतएव सत्संगके अतिरिक्त भक्ति प्राप्त करने केलिये दूसरा कोई भी मुख्य उपाय नहीं है।'

ब्रजनाथ—'गौण भक्तिसाधक होने पर भी कर्म, ज्ञान, वैराग्य और विवेकको भक्तिप्रद-सुकृति कहनेमें अड़चन क्या है ?'

बाबाजी—'हाँ, इनमें विशेष अड़चन हैं। वे अक्सर जीवको एक आवान्तर फलमें आवद्ध कर देते हैं—अर्थात् कर्म जीवको भोग रूपी फलमें बाँध कर शान्त हो जाता है। वैराग्य और विवेक ये जीवको अभेदब्रह्म ज्ञानमें डूबोकर निवृत्त हो जाते हैं, साधारणतः ब्रह्मज्ञान जीवको भगवान्‌के चरणकमलोंकी

(क) हे अच्युत ! जीव अनादिकालसे जन्म-मृत्युरूप संसारके चक्करमें भटक रहा है। जब उस चक्करसे छूटनेका समय आता है, तब सत्संग प्राप्त होता है; और जिस क्षण सत्संग प्राप्त होता है, उसी क्षण संतोंके परम आश्रय और निखिल कार्य-कारणके नियन्ता आपमें जीवकी बुद्धि अत्यन्त दृढ़तासे लग जाती है।

प्राप्तिसे दूर रखता है। इसीलिये इनको विश्वासपूर्वक भक्तिप्रद सुकृति नहीं कहा जा सकता है। ये कदाचित किसीको भक्ति तक ले भी जाते हैं—परन्तु साधारण विधि नहीं है। शुद्धभक्तोंके संगका कोई आवान्तर फल नहीं है—वह जीवको प्रेम तक अवश्य ही ले जायगा। जैसे श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—

सतां प्रसङ्गान्मम वीर्य-सम्विदो
भवन्ति हृत-कर्ण-रसायनाः कथाः।
तज्जोषणादाश्वपवर्ग-वर्त्मनि
श्रद्धा-रतिर्भक्तिरनुक्रमिष्यति ॥ (क)

(श्रीमद्भा० ३।२५।२५)

सत्संग ही एकमात्र भक्तिप्रद-सुकृति है; साधुजनोंके मुख विगलित हरिकथाका श्रवण और पश्चात् भक्तिकी प्राप्ति होती है, क्या इसे ही भक्तिका क्रम-विकाश कहते हैं?'

बाबाजी—'मैं भक्तिके यथावत क्रम-विकाशको बतला रहा हूँ। ध्यान देकर सुनो। संसारमें भ्रमण करते-करते जीवको सौभाग्यवश भक्ति-प्रद सुकृति होती है। शुद्ध भक्तिके जो सब अंग बतलाए गये हैं, उनमेंसे कोई एक अंग दैवात् मानव जीवनमें घट जाता है। जैसे—घटनावश एकादशीके दिन उपवास, भगवानकी लीलास्थली—तीर्थोंका दर्शन या उनका संस्पर्श, अतिथिके मिस किसी शुद्ध भक्तका उपकार, अकिंचन साधुओंके श्रीमुख विगलित हरिनाम या हरिकथा आदिका श्रवण। उक्त कार्योंसे जो लोग भोग-मोक्षकी कामना करते हैं, उन लोगोंके लिये उक्त क्रियाएँ भक्तिप्रद सुकृति नहीं होतीं। अतत्त्वज्ञ व्यक्ति यदि दैववश अथवा लौकिक रूपमें भुक्ति मुक्तिकी कामनासे रहित होकर इन सब कार्योंको करता है, तभी ये समस्त कार्य भक्तिप्रद-सुकृति होते हैं।

यही भक्तिप्रद-सुकृति अनेक जन्मोंमें एकत्रित होकर राशि-राशि होने पर बलशाली होकर अनन्य भक्तिके प्रतिके श्रद्धा उत्पन्न करती है। जब अनन्य भक्तिमें श्रद्धा हो जाती है, तब शुद्ध भक्तों—सच्चे संतोंका संग प्राप्त करनेके लिये लालसा उत्पन्न होती है। सत्संगसे साधन और भजन क्रमशः होने लगते हैं। भजन जितना ही शुद्ध होता है, अनर्थ उसी परिमाणमें दूर होने लगते हैं। अनर्थ दूर होने पर पिछली श्रद्धा निर्मल होकर निष्ठाके रूपमें बदल जाती है, निष्ठा भी क्रमशः निर्मल होकर रुचि हो पड़ती है। रुचि भक्तिके सौन्दर्यसे अधिक दृढ़ होने पर आसक्तिके रूपमें बदल जाती है; वही आसक्ति क्रमशः पूर्णता लाभ करने पर भाव या रति होती है। रति सामग्रीके साथ मिलकर रस हो पड़ती है—यही 'प्रेमोत्पत्ति'का क्रम-विकाश है।

मूल कथा यह है कि शुद्ध साधु पुरुषोंका दर्शन होने पर सुकृतिशाली व्यक्तियोंको सन्मार्ग (भक्ति पथ) पर चलनेकी प्रवृत्ति जन्मती है। सिद्धान्त यह है कि—घटनावश पहले-पहल साधुसंग होता है, उसके पश्चात् श्रद्धा और श्रद्धा होने पर द्वितीय साधुसंग होता है। प्रथम साधुसंग का फल—श्रद्धा है। श्रद्धाका दूसरा नाम शरणागति है भगवत्प्रिय देश, काल, द्रव्य और पात्र—इनके सम्पर्कसे प्रथम साधुसंग प्राप्त होता है; प्रथम-साधुसंगसे जिस शरणापत्तिरूप श्रद्धाका उदय होता है, गीतामें उसका लक्षण इस प्रकार बतलाया गया है—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥
(गीता १८।६६)

अर्थात्, स्मार्त-धर्म, अष्टांग-योग, सांख्य, ज्ञान और वैराग्य ये सभी धर्म 'सर्वधर्म'—शब्दसे उक्त हुए हैं। इन सब धर्मोंसे जीवका प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता। इसी लिये इनके त्यागकी बात कही गयी है।

(क) साधुपुरुषोंके समागमसे मेरे पराक्रमका यथार्थ ज्ञान करानेवाली तथा हृदय और कानोंको प्रिय लगने वाली कथाएँ होती हैं। उनका सेवन करनेसे शीघ्र ही अविद्या निवृत्तिके पथ स्वरूप मुझमें सबसे पहले श्रद्धा, पीछे रति और अंतमें प्रेमभक्तिका क्रमशः विकाश होता है।

भगवान कहते हैं—सच्चिदानन्द-घनस्वरूप मैं व्रज-विलासी कृष्ण ही जीवोंकी एकमात्र गति हूँ, ऐसा जानकर भोग-मोक्ष आदिकी कामनाओंसे रहित होकर अनन्यभावसे मेरे शरणागत होना ही प्रवृत्तिरूप श्रद्धा है। वैसी श्रद्धा उदित होनेसे जीव रोते-रोते वैष्णव-साधुके अनुगमनमें प्रवृत हो जाते हैं; इस बार वे जिस साधुका आश्रय ग्रहण करते हैं, उनका नाम ही गुरु है।"

व्रजनाथ—'जीवके अनर्थ कितने प्रकारके होते हैं?'

बाबाजी—'अनर्थ चार प्रकारके होते हैं—(१) स्व-स्वरूपकी अप्राप्ति, (२) असत्तृष्णा, (३) अपराध, (४) हृदय-दौर्बल्य। 'मैं शुद्ध चित्कण, कृष्णदास हूँ'—इसे भूल कर जीव अपने स्व-स्वरूपसे बहुत दूर हो गया है, स्व-स्वरूपकी अप्राप्ति ही जीवका प्रथम-अनर्थ है। जड़-पदार्थोंमें 'मैं और मेरा' की बुद्धि करने से जो असत्-विषय-सुखोंकी तृष्णा होती है, उसे असत्-तृष्णा कहते हैं। पुत्रकी कामना, धनकी कामना और स्वर्गकी कामना—यह तीन प्रकारकी असत्तृष्णा होती है। अपराध दस प्रकारके होते हैं, उसे पीछे बतला-ऊँगा। हृदय-दौर्बल्यसे शोक आदि पैदा होते हैं। ये चार प्रकारके अनर्थ अविद्या द्वारा बँधे हुए जीवोंके नैसर्गिक फल हैं। सत्संगमें शुद्ध कृष्णानुशीलन करने से ये सब अनर्थ क्रमशः दूर हो जाते हैं। योग आदि दूसरे-दूसरे मार्गोंमें प्रत्याहार, यम, नियम, वैराग्य आदि साधन-चतुष्टयोंकी जो व्यवस्था है, वह उद्वेग-रहित होनेका उपाय नहीं है; उसमें पतनकी बहुत ही आशंका होती है और उससे चरममें कल्याण होना अत्यन्त कठिन होता है। उद्वेगशून्य होनेका एक मात्र उपाय है—सत्संगमें कृष्णका शुद्धरूपसे अनुशीलन होना। अनर्थ जितने ही अधिक दूर होते हैं, मायिक दशा उतनी ही अधिक तिरोहित होती है। और मायिक दशा जिस परिमाणमें तिरोहित होती है, जीवका स्व-स्वरूप उसी परिमाणमें उदित होता है।'

व्रजनाथ—'क्या अनर्थ-रहित व्यक्तियोंको 'मुक्त' पुरुष कहा जा सकता है?'

बाबाजी—'इस विषयमें श्रीमद्भागवतके (६।१४।३-५) निम्नलिखित श्लोक विवेचनीय हैं—

'रजोभिः सम-संख्याताः पार्थिवैरिह जन्तवः।
तेषां ये केचनेहन्ते श्रेयो वै मनुजादयः॥
प्रायो मुमुक्षवस्तेषां केचनैव द्विजोत्तम।
मुमुक्षूणां सहस्रेषु कश्चिन्मुच्येत सिध्यति॥
मुक्तानामपि सिद्धानां नारायण परायणः।
सुदुर्लभः प्रशान्तात्मा कोटिष्वपि महामुने॥ (क)

अनर्थमुक्त पुरुष ही शुद्धभक्त हैं। भक्त अत्यन्त दुर्लभ है, कोटि-कोटि मुक्त पुरुषोंमें से मुश्किलसे एक कृष्णभक्त पाये जाते हैं। अतएव कृष्ण-भक्तोंसे बढ़कर दूसरा दुर्लभ संग संसारसे मिल नहीं सकता है।'

व्रजनाथ—'वैष्णव-जन कहनेसे क्या गृहत्यागी वैष्णवका बोध होता है?'

बाबाजी—'शुद्ध कृष्णभक्त ही वैष्णव हैं—चाहे वे गृहस्थ हों अथवा गृहत्यागी, ब्राह्मण हों या चाण्डाल, धनी हों या दरिद्र। जिनकी जिस परिमाण शुद्धकृष्ण-भक्ति है, वे उसी परिमाणमें कृष्ण भक्त हैं।'

व्रजनाथ—'मायामें बँधे हुए जीव पाँच प्रकारके होते हैं, इसे आपने पहले ही बतलाया है। आपने साधन भक्त और भाव भक्तोंकी गणना भी माया-बद्ध जीवके अन्तर्गत की है। किस अवस्था तक पहुँचने पर भक्तजन मायामुक्त' श्रेणीमें परिगणित होते हैं?'

बाबाजी—'यों तो भक्त-जीवन प्रारम्भ होते ही

(क) भगवन्! इस जगत्में पृथ्वीके धूलिकणोंके समान ही असंख्य जीव हैं। उनमेंसे कुछ ही जीव अपने कल्याणकी चेष्टा करते हैं। (अधिकांश जीव विषयी, जड़ीभूत और तुच्छ इन्द्रिय-सुखोंमें प्रमत्त रहते हैं।) जो थोड़े से जीव अपने कल्याणकी चेष्टा करते हैं, उनमेंसे भी संसारसे मुक्ति चाहनेवाले तो विरले ही होते हैं और उनमें से भी हजारोंमें मुक्ति या सिद्धि लाभ तो कोई सा ही कर पाता है। करोड़ों सिद्ध एवं मुक्त पुरुषोंमें भी कोई सा ही शान्त-चित्त महापुरुष नारायणके भक्त होते हैं। अतएव नारायणभक्त अतीव दुर्लभ होते हैं।

जीव मायामुक्त कहलाने लगते हैं, परन्तु 'वस्तुगत मुक्ति' भक्ति साधनकी परिपक्व अवस्था उपस्थित होने पर ही हो सकती है। उससे पूर्व केवल 'स्वरूप-गत-मुक्ति' होती है। जीवके स्थूल और लिङ्ग शरीरोंके सम्पूर्ण रूपसे विच्छिन्न होने पर ही वस्तुगत-माया-मुक्ति होती है। साधन भक्तिका अनुशीलन करते-करते भावभक्तिका उदय होता है। भावभक्तिमें दृढ़ रूपसे अवस्थित होने पर जीव जड़ शरीरका परित्याग करनेके अनन्तर लिंग शरीरको भी छोड़ कर चित् शरीरमें अवस्थित होता है। इसलिये साधन भक्ति-कालमें मायिक दशा रहती है, भावभक्तिके प्रारंभमें भी वह दशा सम्पूर्ण रूपसे दूर नहीं होती है—इन दोनों अवस्थाओंका विवेचन कर साधनभक्ति और भावभक्तिको मायामें बँधे हुए पाँच प्रकारके जीवोंके बीच रखा गया है। विषयी और मुमुक्षु लोग तो इन पाँच प्रकारके जीवोंकी श्रेणीमें अवश्य ही परि-गणित हैं। मायासे छुटकारा एक मात्र हरिभक्ति द्वारा ही सिद्ध होता है। जीव अपराधी होकर माया-बद्ध हुए हैं। 'मैं कृष्णदास हूँ' इसे भूलना ही मूल अपराध है। बिना कृष्ण-कृपाके अपराध दूर नहीं होते। अतएव उनकी कृपाके अतिरिक्त मायासे मुक्ति पानेकी संभावना नहीं है। ज्ञानी सम्प्रदायका विश्वास है—'केवल ज्ञानसे ही मुक्ति मिलती है। परन्तु यह सम्पूर्ण निराधार विश्वास है। भगवत् कृपाके बिना मायासे कदापि छुटकारा नहीं मिल सकता। इसलिये श्रीमद्भागवतमें (१०।२।३२-३३) कहते हैं—

येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्तमानिन-
स्त्वय्यस्तभावादविशुद्ध-बुद्धयः ।
आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः
पतन्त्यधोऽनादृत-युष्मदङ्घ्रयः (क)
तथा न ते माधव तावकाः क्वचिद्
भ्रश्यन्ति मार्गात् त्वयि बद्ध-सौहृदाः।
त्वयाभिगुप्ता विचरन्ति निर्भया
विनायकानीकपमूर्धसु प्रभो ॥ (ख)

ब्रजनाथ—'माया-मुक्त जीव कितने प्रकारके हैं ?'

बाबाजी—'माया मुक्त जीव दो प्रकारके हैं—नित्यमुक्त और बद्धमुक्त। जो जीव कभी भी माया द्वारा बद्ध नहीं हुए हैं, वे नित्यमुक्त जीव हैं। नित्यमुक्त जीव भी दो प्रकारके हैं—ऐश्वर्यगत-नित्यमुक्त जीव और माधुर्यगत-नित्यमुक्त जीव। ऐश्वर्यगत-नित्य-मुक्त जीव वैकुण्ठपति नारायणके पार्षद हैं तथा परव्योमस्थ (वैकुण्ठस्थ) मूल-संकर्षणके किरण-कण हैं। माधुर्यगत-नित्यमुक्त जीव गोलोक-वृन्दावन नाथ श्रीकृष्णके पार्षद हैं। वे गोलोक-वृन्दावनस्थ श्रीबल-देवके किरण-कण हैं।

बद्धमुक्त-जीव तीन प्रकारके हैं—ऐश्वर्यगत, माधुर्यगत और ब्रह्मज्योतिर्गत। जो साधनकालमें ऐश्वर्य-प्रिय थे, वे परव्योमनाथके नित्य पार्षदोंके साथ सालोक्य प्राप्त करते हैं; साधनकालमें जो लोग माधुर्य-प्रिय थे, वे मोक्ष प्राप्त करनेके अनन्तर नित्य-वृन्दावन आदि धामोंमें सेवा सुखका भोग करते हैं। और जो जीव साधनकालमें अभेद अनुसंधानमें तत्पर हुए,

(क) हे कमलनयन ! जो लोग 'मैं मुक्त हो गया हूँ'—ऐसा अभिमान करते हैं और आपके प्रति भक्ति-शून्य हैं, उनकी बुद्धि शुद्ध नहीं है। वे अनेक क्लेश उठाकर मायातीत परमपद स्वरूप ब्रह्म तकको प्राप्त होकर भी भग-वद्भक्तिका अनादर करनेके कारण अधःपतित हो जाते हैं।

(ख) हे माधव ! जो आपके निजजन—भक्त हैं, जिन्होंने आपके चरणोंमें अपनी सच्ची प्रीति जोड़ रखी है, वे कभी भी उन ज्ञानाभिमानियोंकी भाँति अपने साधन-मार्गसे अर्थात् भक्तिपथसे गिरते नहीं। प्रभो ! वे आपके द्वारा सुरक्षित होनेके कारण विघ्न डालनेवालोंके सिर पर पैर रख कर निर्भय विचरते हैं, कोई भी बाधा उनके मार्गमें रुकावट नहीं डाल सकती।

वे मोक्ष लाभ कर ब्रह्म-सायुज्यरूप सर्वनाशको प्राप्त होते हैं।'

ब्रजनाथ—'जो श्रीगौरकिशोरके अनन्य भक्त हैं उनकी चरम गति क्या होती है ?'

बाबाजी—'श्रीकृष्ण और गौरकिशोर—ये पृथक तत्त्व नहीं हैं। ये दोनों ही मधुर रसके आश्रय हैं। थोड़ा सा केवलमात्र भेद यह है कि माधुर्यरसके दो भेद होते हैं, अर्थात् माधुर्य और औदार्य; उनमें जहाँ माधुर्य प्रबल होता है, वहाँ श्रीकृष्ण-स्वरूप विराजमान रहते हैं और जहाँ औदार्य प्रबल होता है, वहाँ श्रीगौराङ्ग-स्वरूप विराजमान रहते हैं। मूल वृन्दावनमें भी दो पृथक प्रकोष्ठ हैं—एक कृष्णपीठ और दूसरा गौरपीठ। कृष्णपीठमें जो सब नित्यसिद्ध और नित्यमुक्त पार्षद माधुर्य-प्रधान-औदार्य भाव प्राप्त किये हैं, ये कृष्णगण हैं; श्रीगौरपीठमें ये ही समस्त नित्यसिद्ध और नित्यमुक्त पार्षदगण ही 'औदार्य-प्रधान-माधुर्य भोग करते हैं। किसी किसी क्षेत्रमें कोई कोई पार्षद स्वरूप-व्यूहके द्वारा दोनों ही पीठोंमें वर्त्तमान रहते हैं; पुनः कोई-कोई एक ही स्वरूपमें एक ही पीठमें वर्तमान रहते हैं, दूसरे पीठमें नहीं। जो साधनकालमें केवल गौर उपासक होते हैं, वे सिद्धकालमें केवल गौरपीठमें सेवा करते हैं; जो साधनकालमें केवल कृष्ण उपासक हैं, वे सिद्धकालमें कृष्णपीठमें सेवा करते हैं। और जो साधनकालमें कृष्ण और गौर, दोनों स्वरूपोंके उपासक होते हैं, सिद्धकालमें वे दो शरीर धारण कर दोनों ही पीठोंमें एक ही समय वर्त्तमान रहते हैं यही गौर-कृष्णके अचिन्त्य-भेदाभेदका परम रहस्य है।'

यहाँतक मायामुक्त-अवस्था-सम्बन्धी उपदेशका श्रवण कर ब्रजनाथ और स्थिर न रह सके। वे भावावेशमें वृद्ध वैष्णव बाबाजीके चरण-प्रान्तमें गिर पड़े। बाबाजी महाशयने रोते-रोते ब्रजनाथको उठा कर गलेसे लगा लिया। रात बहुत हो गयी थी। ब्रजनाथ बाबाजी महाशयसे विदा होकर घर लौटे। रास्ते भरमें बाबाजीके उपदेशोंके चिन्तनमें विभोर रहे।

घर पहुँच कर भोजन करते-करते पितामहीसे बोले—'दादी ! यदि तुम लोग मुझे देखना चाहती हो, तो मेरे विवाहकी बात बन्द रखो और वेणी-माधवके साथ कोई सम्बन्ध न रखो—वह मेरा परम शत्रु है; मैं कलसे उसके साथ कभी भी बातचीत न करूँगा और तुमलोग भी इस विषयमें कोई चेष्टा न करना।'

ब्रजनाथकी पितामही बड़ी बुद्धिमती है, उन्होंने ब्रजनाथके भावोंको ताड़ कर मन-ही-मन कहा—'विवाहका प्रस्ताव अभी स्थगित रखना ही अच्छा है; ब्रजका जैसा भाव देख रही हूँ, उससे ऐसा प्रतीत होता है कि यदि विवाहके लिये उस पर अधिक दबाव दिया जाय, तो हो सकता है कि वह वाराणसी या वृन्दावन चला जाय। भगवान्‌की जैसी इच्छा है वैसा ही हो।

सत्रहवाँ अध्याय समाप्त

नवभारत टाइम्सके सम्पादकके नाम पत्र

कैम्प-बम्बई
दिनाङ्क—२ सितम्बर १९५८

सेवा में,

श्रीसम्पादक महोदय,
'नवभारत टाइम्स,
बम्बई,

महोदय,

आपके प्रसिद्ध पत्र 'नव-भारत टाइम्स' में श्रीकृष्ण जन्माष्टमीके सम्बन्धमें दिनाङ्क १ सितम्बर, १९५८ को जो लेख प्रकाशित हुआ है, उसमें कई एक बातें ऐसी हैं,जो भागवती सिद्धान्तके दृष्टिकोण-से कुसिद्धान्तमूलक हैं । विशेषतः भगवान् मनुष्य हैं—यह सर्वथा गलत सिद्धान्त है । आजकल मनुष्य को भगवान् बनाना और मनुष्योंकी जन्मतिथिको 'जयन्ती' मानना, एक आधुनिक ढंग हो गया है। श्रीमद्भगवद्गीतामें स्पष्ट लिखा है कि जो भगवान् श्रीकृष्णको मनुष्य समझते हैं, वे मूढ़ व्यक्ति हैं। भगवान्को मनुष्य और मनुष्यको भगवान् समझना, दोनों ही मूढ़ता है। भगवान् जभी अवतार लेते हैं, आत्ममाया अर्थात् चिच्छक्तिसे प्रकट होते हैं ।

भगवान् श्रीकृष्ण चतुर्भुजरूपसे देवकीके गर्भसे निकले थे, ऐसी बात तो शास्त्रोंमें कहीं भी नहीं है, परन्तु आपने तो स्पष्ट ही लिखा है कि श्रीहरिने वसुदेवकी पत्नि देवकीके गर्भसे श्रीकृष्ण अवतार धारण किया था । श्रीमद्भागवतमें श्रीकृष्णको अवतारी माना गया है—'कृष्णस्तु भगवान् स्वयं' । वैकुण्ठमें चतुर्भुज नारायण, स्वयंरूप श्रीकृष्णके वैभव-विलास-विग्रह हैं । राम आदि विष्णु विग्रह-गण भगवान् श्रीकृष्णकी अंश-कलाएँ हैं । यद्यपि तत्त्वतः उनमें परस्पर कोई अन्तर नहीं है,तथापि परम पुरुष आदि पुरुष—द्विभुज मुरलीधर श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण ही हैं। श्रीकृष्णसे बढ़ कर दूसरा कोई भी पर-तत्त्व नहीं है । अतः श्रीकृष्णको मनुष्य अवतार कहना अत्यन्त अपराधजनक है ।

'जिनकी जन्मतिथिका पालन करनेसे मुक्ति मिलती है'—आपने ऐसा लिखा है । फिर भला, वह व्यक्ति क्या मनुष्य हो सकता है ? मनुष्यकी जन्म-तिथिका पालन करनेसे क्या कभी मुक्ति मिल सकती है ? मनुष्यको भगवान् बनाकर, उनकी जन्मतिथिको जयन्ती बताना तथा भगवान् श्रीकृष्णको मनुष्य समझकर साधारण मनुष्यकी तरह उनमें भी देह-देही का भेद करना अपराध माना गया है ।

विष्णु-तत्त्व राम, नारायण आदिको बड़े-बड़े देवताओंके समान मानना पाखण्ड है । फिर उनको मनुष्यके समान मानना या मनुष्य समझना तो बहुत ही अपराधकी बात है ।

ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः ।
अनादिरादिर्गोविन्दः सर्वकारणकारणम् ॥
(ब्रह्मसंहिता ५।१)

भगवान् श्रीकृष्ण जभी प्रकट होते हैं, तभी अपने सच्चिदानन्द विग्रहसे ही अवतीर्ण होते हैं। मनुष्य जैसा उनमें देह-देहीका भेद नहीं होता । वे अद्वय-ज्ञान एक ही स्वरूप हैं ।

आशा है, आप इस पत्रको अपने 'नव-भारत टाइम्स' में मुद्रण करनेकी आज्ञा प्रदान करेंगे ।

भवदीय—
श्रीअभयचरणारविन्द भक्तिवेदान्त
एडिटर, बैक-टू-गौडहेड ।

शरणागति

[ॐविष्णुपाद श्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुर]

प्रतिकूल वर्जन (मानसिक)

विषय-विमूढ़ और मायावादी जन ।
भक्ति शून्य दोनों जीव धारें अकारण ॥
इन दो का सङ्ग नाथ न होवे हमार ।
प्रार्थना करूँ मैं यही चरण तुम्हार ॥
इन दोनों में विषयी कुछ खुशहाल ।
मायावादियोंका न हो सङ्ग किसी काल ॥
विषयी हृदय जब साधुसङ्ग निवासे ।
अनायास पाये भक्ति, कृष्ण कृपासे ॥
मायावाद दोषको हृदय पाले जोय ।
कुतर्क हृदय उसका वज्र सम होय ॥
भक्तिका स्वरूप और विषय आश्रय ।
मायावादी अनित्य कहें समुदय ॥
धिक् उनकी कृष्ण-सेवा श्रवण-कीर्त्तन ।
कृष्ण-अङ्ग वज्र मारे उनका स्तवन ॥
इसीसे है मायावाद भक्ति-प्रतिकूल ।
मायावादी-सङ्ग नहीं चाहूँ कभी भूल ॥
भक्ति विनोद मायावाद दूर करो ।
वैष्णव के सङ्ग बैठि नाम आश्रय धरों ॥

दरस न देहिहो कब लग प्यारे ।
तब लग कहाँ तुमको पइहौ, काहे निठुर भये कारे ॥
हमहिं दीन तुम दीन-दयालु, कहाँ अपनपौ हरि ।
नैया मोरी बीच भँवरमें, अब तो करो किनारे ॥
कोहु न अपनो मोको सूझे, आया शरण तिहारे ।
तुमहि पार लगवौ प्रभुजी, तुम ही प्राण अधारे ॥
जनम-जनम की रगर न छूटे छूटे तो तेरे सहारे ।
'शचीदास' प्रभु तुम्हरे विरहमें रात कटे गिन तारे ॥

—श्रीसुशीलचन्द्र त्रिपाठी, एम० ए०